यात्री के पत्र

रमेश याज्ञिक

उन पात्रों को
जिन्होंने ये सब लिखने
को प्रेरित किया

अपनी बात

अपने काम की वजह से वर्षों से घूमता रहा हूं। पिछले दस साल तो स्थिति ये रही कि महीने में बीस-पच्चीस दिन लम्बे दौरों पर देश के विभिन्न हिस्सों में जाना-आना रहा। नतीजन दिल्ली, लखनऊ, अहमदाबाद, कानपुर जैसे महानगरों में ही क्यों—अपने शहर में भी मैं एक अजनबी रह गया।...और 'यात्री के पत्र' शीर्षक से एक कालम लिखना शुरू किया।

कोई भ्रम न हो 'यात्री के पत्र' शीर्षक के तहत जो कुछ लिखा गया वह न यात्रा वृत्तांत है, न पर्यटन साहित्य। मैं तो जब ताजमहल देखने जाता हूँ—उसकी खूबसूरती के साथ शाहजहाँ की कब्र पर मोमबत्ती जलाकर एक बादशाह के लिए चंदा माँगने वाले दिखते हैं। बनारस की सुबह की भव्यता देखने नाव पर गंगा घूमने निकलता हूं तो हमारी धर्मांधता का शोषण करने वाले डोम की बेहूदा जड़ों का जाल दीखता है।

यायावर जिंदगी के दौरान अनेक लोगों से दिलचस्प मुलाकातें हुईं। मानवीय, राजनीतिक और शासकीय व्यवहार की विसंगतियाँ और स्पष्ट हुईं। आसमान में जगमगाते चाँद, सूरज के तले साफ और स्याह दिखने वाली सभी चीजें मुझे आकर्षित करती रही हैं—और मेरे लेखन का विषय रही हैं।

मेरे कालम दैनिक देशबंधु (रायपुर, जबलपुर, सतना) में पिछले दस सालों से लगातार छपते रहे हैं। आरम्भ में दैनिक सबेरा-संकेत (राजनांदगाँव) में भी छपे। एक साल से ज्यादा दैनिक स्वतंत्र-भारत (लखनऊ) में भी यह स्तंभ छपता रहा है।

दैनिक देशबंधु के सम्पादक आदरणीय मायाराम सुरजन एवं श्री ललित सुरजन ने बिना रोक-टोक अखबार में मुझे लगातार आवश्यक जगह मुहैया कर और लिखने को प्रेरित किया। इस संकलन के सम्पादन में श्री आदित्य वर्मा ने सहयोग दिया। इनका आभारी हूँ।

—रमेश याज्ञिक

क्रम

यात्री के पत्र-1

यात्री के पत्र-2

यात्री के पत्र-1

शुरुआत

सुबह साढ़े सात बजे भी घने कुहरे के कारण कुछ नहीं दिखाई पड़ता था। सपाटे से चल रही तमिलनाडु के वातानुकूलित कुर्सीयान की बन्द खिड़कियों से दीखती झाड़ों की बेतरतीब आकृतियाँ तेजी से बनती-बिगड़ती जा रही थीं। डिब्बे में ठंड का कोई अहसास नहीं होता था पर बाहर के दृश्य से यह अंदाज जरूर होता था कि ठंड बहुत तेज होगी।

कुछ देर बाद घने छाये बादल और कुहरे से संघर्ष करती सूरज की किरणें जैसे अपनी सफलता पर मुस्कुरा उठीं—अब कुछ साफ दिखने लगा था। पानी से भरे गड्ढे और गीली जमीन से यह भी पता चला कि चन्द घण्टों पहले यहाँ भी बारिश हो चुकी। 26 जनवरी की शाम को जब तिवारीजी और जीवन कोठारी सहित तुमसे मिला था उसके कुछ पहले ही राजनांदगाँव में भी तेज आँधी, बारिश और ओले सबने एक साथ हमला कर आधे घंटे में मौसम का पूरा रंग बदल दिया था।

जयपुर भी बड़ा शहर है इसलिए यहाँ की सुबह की जिंदगी, चहल-पहल का ढंग अलग ही होता है। शाम खूबसूरत होती है, बिजली की जगमगाहट, तेज हवा, रंग-बिरंगे ऊनी कपड़े पहने लोगों की वजह से। पर सुबह मेहनतकशों की और कुछ अजीब-सा रंग लिए होती है।

कड़ाके की सर्दी के बावजूद भी सड़क पर झाड़ू लगाते हरिजन पुरुष-स्त्रियाँ, रिक्शा लौटने के पहले कुछ कमा लेने की चाहत में सरपट दौड़ते रिक्शे वाले, दरवाजों की दरार मूँदकर गर्म लिहाफ में आराम कर रहे

ग्राहक को अखबार पहुँचाने वाले, दूध के तीन-चार कनस्तर सायकिल पर लटकाए घूमते देहाती दूधवाले और इन सबको गर्मी देने वाला छोटी-सी दूकान लेकर बैठा चाय वाला जो भगवान के फोटो के सामने अगरबत्ती जलाकर रखते हुए, कप-बसी उठाने वाले छोटे लड़के को ठंड भगाने वाली गाली देते हुए कहता है—क्यों बे, अब भी सो रहा है क्या ? और अब भी आँख मलता हुआ लड़का क्विक मार्च की मुद्रा में लपक पड़ता है काम करने। इनमें से किसी के भी पास गरम कहा जा सके ऐसा कपड़ा नहीं है। पुराने कोट, स्वेटर या शाल जो तार-तार हो चुके हैं, कई चिथड़े लग चुके हैं, पहने हैं। कान और सिर को बचाने के लिए एक गमछा या पुराना मफलर, इसके सिवा इनकी मेहनत ही है जो उन्हें गर्म रखती है। ये सब जीते हैं दूसरों के लिए, इनकी अपनी कोई जिंदगी नहीं है। ऐसे कितने लोग हैं, मजदूरी करने वाले, स्कूल में पढ़ाने वाले मास्टर या मास्टरनियाँ सब।

ट्रेन की भी अलग दुनिया होती है, अजीब माहौल होता है। सामने बैठे लोगों से चन्द मिनटों में सम्बन्ध बनते हैं और कुछ घंटों बाद खत्म हो जाते हैं और लोग भी नाना प्रकार के होते हैं।

झाँसी से जयन्ती जनता में (इसलिए कि तमिलनाडू आगरा नहीं रुकती) मेरे सामने जो आदमी बैठा था धोती-कुर्ता और टीका लगाए हुए वह शाल ओढ़े हुए था। उसकी मूँछें और गाँठ बँधी शिखा (चुटिया) भी थीं। मुझे प्रथम दृष्टि में वह आदमी आर०एस०एस० के माध्यम से जनसंघ में आया हुआ लगा क्योंकि धोती विशेष ढंग से पहनी थी। लगा कि यदि जनसंघी नहीं तो कम से कम बन्द दिमाग का सांप्रदायिक तो होगा ही। स्वाभाविक रूप से मुझे उसमें कोई दिलचस्पी नहीं थी, पर उसने ही 'पैट्रियाट' अखबार मुझसे माँगकर बातचीत की शुरुआत की।

कुल मिलाकर उसने एक नई बात कही—आज देश के हर प्रदेश में एक-एक कर हर पार्टी की सरकार है। मध्यप्रदेश, राजस्थान, हिमाचल में जनसंघ की, उत्तरप्रदेश, हरियाणा व बिहार में भालोद की, सी० पी० एम० की बंगाल व त्रिपुरा में, केरल में सी० पी० आई० की पंजाब में अकालियों की, कश्मीर में मुसलमानों की, गुजरात में संगठन कांग्रेस की

और इंदिरा कांग्रेस की कर्नाटक व आन्ध्र में यहाँ तक कि छोटी-छोटी सूबाई पार्टियाँ असम के पर्वतीय प्रदेशों में सत्ता पर है। किसी पार्टी को यह शिकायत नहीं होनी चाहिए कि उसे मौका नहीं मिला। पर उनकी शिकायत थी कि कोई भी पार्टी कुछ भी नहीं कर रही है। वे विशेष रूप से जनसंघ को असफल मान रहे थे और सख्त नाराज थे। वे बिहार के हैं, रहते हैं मथुरा में और परेशान थे कि मध्यप्रदेश जैसे नैसर्गिक संपदा वाले पिछड़े हुए प्रदेश के विकास की कोई ठोस योजना जनसंघ नहीं बना पाया है। उन्होंने कहा कि वे अभी दो माह के दक्षिण भारत के व्यापक दौरे के बाद लौट रहे हैं। सिवा केरल के किसी भी प्रदेश की जनता शासन से संतुष्ट नहीं है। वहाँ सत्तारूढ़ दलों में भी कोई झगड़े नहीं हैं।

मैं हैरान था—आखिर यह आदमी है किस विचारधारा का ? इतने में ही आगरा आ गया। उसने मुझे सामान उठाने में सहायता की और डिब्बे के बाहर आकर प्लेटफार्म पर भी खड़ा रहा। बात करते हुए और बार-बार हमारी मुलाकात को प्रसन्नता का विषय बताते हुए।

पिछली बार जब मैं भोपाल से के० के० एक्सप्रेस (केरला कर्नाटका), जिसे नागपुर के कुली कुँवारी कन्या एक्सप्रेस कहते हैं, के थ्रीटायर कोच में बैठा। जगह केवल वहीं थी जहाँ छः बर्थ के एक बालक में तीन सदस्यीय कैनेडीयन परिवार बैठा था। संभवतः भारतीय लोग अभी भी गोरी चमड़ी वालों को श्रेष्ठ समझते हैं और संकोच करते हैं, वहीं जाकर बैठा, पत्रिकाएँ निकालीं और पढ़ने लगा। वे तीनों ताश खेल रहे थे।

कुछ देर बाद पत्रिकाएँ माँगकर परिवार के मुखिया ने बातचीत शुरू की। उसने कहा कि चूँकि वह स्वयं एक विदेशी है, चाहते हुए भी दूसरों से राजनयिक बातें करने में संकोच होता है, क्योंकि लोग दूसरा ही अर्थ निकाल सकते हैं।

मैंने उसे आश्वस्त किया, मेरे साथ ऐसा नहीं होगा। फिर वह खुला। उस दिन संभवतः अठारह जनवरी को चौधरी चरणसिंह का यह बयान हर अखबार में सुर्खियों में छपा था—मैं मंत्री-पद के लिए किसी के तलुवे नहीं चाट सकता। इसके साथ ही मोरारजी और चरणसिंह में समझौता होने की हर संभावना खत्म-सी हो गई थी। उसने पूछा—ये सब क्या हो रहा है ?

आठ महीने से हर रोज किसी न किसी फार्मूले के बारे में छपता है, समझ में नहीं आता कि क्या हो रहा है। इस देश में शासन व्यवस्था कैसे चल रही है।

मैंने हँसते हुए कहा—यह तो कम से कम तीन साल और चलेगा। ये सब लड़ेंगे—दुहाई सिद्धांतों की देंगे और कुर्सी से चिपके रहेंगे। हमारे देश की राजनीति एक व्यक्तिपरक (पर्सनलाइज्ड) हो गई है—सिद्धांत, विचारधारा का तो प्रश्न ही नहीं है। आम आदमी को गलत समझाया गया है और उसे वहम हो गया है कि मोरारजी, चरणसिंह, जगजीवनराम और इंदिरा ही देश के प्रधानमंत्री हो सकते हैं। लड़ाई, ताकत आजमाइश और समझौते यह तो चलते ही रहेंगे जब तक लोग स्वयं कोई विकल्प खोज न निकालें।

उसने कहा—यह तो बहुत बड़ी बात हो गई जिसमें एक विदेशी के नाते मेरा कोई योगदान नहीं हो सकता। पर मुझे लगता है, आपके यहाँ ब्यूरोक्रेसी (नौकरशाही) ज्यादा सशक्त है, अन्यथा व्यवस्था तो ऐसी दशा में ठप्प ही हो गई होती।

यह एक विदेशी का दृष्टिकोण है—पर कितना सही है। मैं तो हतप्रभ रह गया !

नागपुर तक लगभग दो घंटे की चर्चा में उसने अन्य बातें कहीं, वे संक्षेप में यों थीं—मैं यहाँ तीनों प्रधानमंत्री नेहरू, इंदिरा और मोरारजी के कार्यकाल में अलग-अलग अवधि में रहा हूँ। किसी का पक्षधर नहीं हूँ। पर उपलब्धियों को नकारना इतिहास को झुठलाना है। मिसाल के तौर पर ट्रेन का यह आरामदेह डिब्बा, तेज चलने वाली यह ट्रेन क्या ये सब किसी एक मंत्री की उपलब्धि है। इसके लिए तो वर्षों की प्लानिंग-रिसर्च-डेवलपमेंट (योजना-शोध-विकास) की आवश्यकता होती है। औद्योगिक व सुरक्षा उत्पादन और आत्मनिर्भरता कोई तात्कालिक उपलब्धि नहीं होती, सब मतभेदों के बावजूद मैं कह सकता हूँ कि यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण देश को आपके पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने दिया। मजे की बात है कि उनके बाद भी हर सरकार यहाँ तक कि उनकी पुत्री इंदिरा गांधी भी जैसे उनका नाम मिटाने पर ही आमादा है। सही बात तो यह

है कि वे सही डेमोक्रेट थे और हर दंगे के बावजूद हर अल्पसंख्यक कौम अपने को सुरक्षित समझती थी।

संयुक्त राज्य अमेरिका का पड़ोसी होने और विकास की एक ही प्रकार की ऐतिहासिक प्रक्रियाओं के कारण कैनेडावासी और अमरीकी में फर्क बहुत कम होता है। पर मुझे मानना पड़ा कि यह आदमी वाकई सुलझे दिमाग का है और स्थिति का मूल्यांकन वास्तविक आधार पर करता है।

4 फरवरी '79

दोनों को मिक्स मत करो !

ठंडी हवा का एक तेज झोंका आया और पेड़ से ढेर सारे सूखे पत्ते हवा में तैरते नीचे उतरे। एक हल्का झोंका आया, गिरे हुए सूखे पत्ते उलटते-पलटते सड़क पर जैसे दौड़ पड़े। एक मेरे चेहरे को हल्की-सी थपकी देता हुआ नीचे गिरा।

अनायास याद आया—पतझड़ तो खत्म होता जा रहा है। इसके बाद तो बसंत आयेगा। नये हरे कोमल व चमकदार पत्ते फिर उग आयेंगे। प्रकृति नया श्रृंगार सज कर उल्लसित होगी।

इंसान की जिन्दगी में बसंत क्यों नहीं आता—हर साल बहार क्यों नहीं आती। हर सालगिरह पर जैसे एक वर्ष खत्म होने का खटका होता है, दहशत होती है। हर नया साल हमें जिंदगी के पूर्णविराम की ओर ढकेलता है।

कितना फर्क है मनुष्य और प्रकृति के परिवर्तन में !

पिंक सिटी एक्सप्रेस—गुलाबी शहर की द्रुतगामिनी, क्या बढ़िया नाम है। अब तो ट्रेनों के नाम साहित्यिक होते जा रहे हैं—गीतांजली, गंगा, कावेरी, गोमती, सारनाथ, चेतक आदि। पिंक सिटी मीटर गेज की ट्रेन, जयपुर से दिल्ली 310 किलोमीटर साढ़े चार घंटे में पहुँचाती है।

चेतक एक्सप्रेस में एक बार नाम के धोखे में बैठ गया था। दिल्ली से जयपुर आठ घंटे में पहुँचा। मैंने सामने बैठे युवा दम्पति से मजाक में कहा, चेतक तो ऐसा नहीं था। महिला ने हँसकर कहा, अरे साहब इन्होंने

टट्टू को चेतक नाम दे दिया है। चेतक ऐसा हुआ होता तो राणा प्रताप का क्या हुआ होता ?

पिंक सिटी दिल्ली बिफोर टाइम पहुँचा देगी ऐसा लगता है, पालम हवाई अड्डे के करीब से गुजर रहे हैं। दूर-दूर तक रनवे पर लाल, पीली, नीली तेज रोशनियाँ फैली हैं। किताब बन्द कर बैग में रखता हूँ व सामने बैठा यात्री जैसे इसी का इंतजार कर रहा था, पूछता है—आप दिल्ली में कहाँ जायेंगे।

मैंने कहा—कनाटप्लेस के एक होटल में ठहरूँगा।

उसने बेलाग कहा—मैं भी आपके साथ आटो में चलूँगा। मुझे उसी ओर पहाड़गंज जाना है।

अनजाने लोग दिलचस्प भी हो सकते हैं और डर भी लगता है—कहीं…? मैंने सोचा शायद यह पैसे की बचत सोच रहा है—ठीक है साथ चलियेगा, जो पैसा होगा बाँट लेंगे।

उसने कहा—साहब, पैसे की बात नहीं है, पैसा तो मैं ही दे दूँगा। अभी पन्द्रह रोज पहले इसी ट्रेन से आया था—आटो में ड्रायवर के साथ उसका दोस्त भी था। रास्ते में सूनी जगह पर रोककर उन्होंने चाकू निकाला और पैसे, घड़ी, ब्रीफकेस सभी कुछ ले गये। साहब आजकल दिल्ली बड़ी असुरक्षित हो गई है।

उसकी बात में कुछ वजन महसूस हुआ। उसी के साथ गया। आटो का किराया मुझे नहीं देने दिया। मैं सोचता रहा, यदि देश की राजधानी दिल्ली का नागरिक इतना भयाक्रांत है—इतना अनसेफ महसूस करता है तो अन्य स्थानों में क्या होगा ?

सामने की बर्थ पर दो युवक बैठे थे आधुनिकता का प्रतीक बने हुए—जीन्स और बदरंग कमीज पहने। रूखे बड़े बाल, बढ़ी हुई दाढ़ी-मूँछें। बेतरतीब अमरीकी लहजे में—गलत अंग्रेजी में बातें कर रहे थे। बम्बइया फिल्मों में ही दिलचस्पी थी, यह उनके पास पड़ी घटिया (गॉसिप्स) गुफ्तगू वाली पत्रिकाओं से जाहिर था। एक ने कहा—यार, उस दिन सत्यजीत रे की फिल्म 'शतरंज के खिलाड़ी' देखी—क्या बोर किया है।

मैं चौंका, शतरंज के खिलाड़ी और बोर—मैंने भी तो देखी है वह

फिल्म। मुझे लगा था कि निहित स्वार्थ और व्यावसायिक पत्रकारिता ने साजिश कर एक सुन्दर कलाकृति की हत्या की है—गलत प्रचार कर, अच्छे थियेटरों में और कुछ क्षेत्रों में उसका प्रदर्शन न होने देकर। बम्बई में बनी घटिया किस्म की ऐतिहासिक फिल्मों के प्रशंसकों ने रे की इस फिल्म के ऐतिहासिक तथ्यों की जो आलोचना की है। इसका सबसे प्रमुख कारण मुझे तो यही लगा कि इस फिल्म के विज्ञापन सिने-पत्रिकाओं को नहीं मिले।

सत्यजीत रे ने दो वर्षों तक ऐतिहासिक दस्तावेजों का विदेशों में जाकर वाजिदअली शाह के युग के चित्रों का अध्ययन कर पटकथा, वेश-भूषा, सेट्स, संगीत आदि तैयार किये हैं और विशिष्ट अभिनेताओं को विशेष पात्रों के लिए चुना। तत्कालीन लखनऊ हर दृष्टि से सजीव खड़ा कर दिया है। यहाँ तक कि तत्कालीन भाषा की वास्तविकता के लिए भी स्कालरों की सहायता ली। वह फिल्म बोर हो गई, वाह ! क्या बात है !

मैंने उनकी बातों में दिलचस्पी लेते हुए दखल देना शुरू किया। मैंने उस फिल्म की कमियाँ जाननी चाहीं। एक ने कहा—सच कहें, फिल्म की उर्दू बड़ी क्लिष्ट है। मैंने पूछा—'मुगले आज़म' और 'पाक़ीज़ा' से भी ? सही उत्तर के अभाव में उसने कहा—वह तो फिर भी समझ में आ जाती थी, इसमें तो पल्ले ही कुछ नहीं पड़ता।

मजे की बात है, हमारी बातचीत अंग्रेजी में ही हो रही थी। मैंने पूछा—अच्छा साहब, आप जो अंग्रेजी फिल्में देखते हैं उनके डायलाग पूरे समझ में आ जाते हैं।

यह प्रश्न उन्हें अच्छा नहीं लगा, कहा—क्या मतलब ?

मेरा दावा है कि जितने भारतीय अंग्रेजी फिल्में देखते हैं उनमें से 95 प्रतिशत लोग संवाद नहीं समझते फिर भी टिकिट ब्लैक में बिकते हैं। यह सम्भवतः इसलिए कि अमरीकी फिल्म देखकर आधुनिक कहलाने का मानसिक संतोष मिलता है। जबकि अन्य भारतीय भाषाओं की श्रेष्ठ फिल्में, जो विश्व के मैदान में पुरस्कार जीतती हैं, हमारे आधुनिकता के दिखावे में फिट नहीं बैठतीं।

दूसरे दो-तीन यात्री जो हमारी बातचीत में दिलचस्पी ले रहे थे वे तो

चर्चा में जुड़ गये, पर वे दोनों युवक आपस में दूसरी चर्चा करते हुए दायरे से अलग हो गये।

यात्रियों के भी वर्ग होते हैं। फर्स्ट-सेकंड से मेरा तात्पर्य नहीं है। देश के ओर-छोर जाने वाली एक्सप्रेस गाड़ियों का सेकंड क्लास का मुसाफिर मूलरूप में नौकरी पेशा या मध्यमवर्गीय होता है। पैसेंजर ट्रेनों का यात्री देहाती किसान या मजदूर होता है। और होता है—गठरियों, पेटियों में बाजार-हाट करने वाला दुकानदार। इन्हें लम्बी यात्राएँ नहीं करनी पड़तीं। परन्तु बसों में हर वर्ग का यात्री मिलता है। वह समूह जैसे विविध भारती का मनोरंजन कार्यक्रम होता है। हर यात्री राज्य परिवहन को कोसता हुआ—पर लाइलाज यात्रा करता है।

दक्षिण के सभी राज्यों, महाराष्ट्र, गुजरात, हरियाणा, पंजाब के सिवा जाने क्यों हिन्दी भाषा-भाषी राज्यों की परिवहन सेवा रद्दी, गंदी, अनियमित और मन में कोफ्त पैदा करने वाली होती है। मध्यप्रदेश राज्य परिवहन इसकी सबसे बढ़िया मिसाल है। ये सेवाएँ सुधरें भी कैसे? जनता के प्रतिनिधि सर्वप्रथम तो अपनी सुविधा की व्यवस्था करते हैं। पिछले दो सालों से जिन राज्यों में जनता पार्टी की सरकारें बनी हैं, प्रत्येक बस में सामने की पाँच सीटों पर लिखा गया है—विधायक सीट। राजस्थान, उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश तीन राज्यों में अनेक बस यात्राएँ इस अवधि में कीं; मुझे तो भाग्य से भी किसी विधायक के दिव्य दर्शन नहीं हुए। कुछ को छोड़िए, आम तौर पर विधायक चुने जाने के बाद वे अपनी या दूसरों की कार में घूमने की योग्यता तो प्राप्त कर ही लेते हैं।

इसका और कोई लाभ हो या नहीं, कुछ लम्बी यात्राओं के भीड़ भरे रूट पर यह पाँच सीटें कंडक्टर को ज्यादा पैसा देने वाला प्राप्त कर ही लेता है।

मैं सोचता हूँ—पाँच सीटों की व्यवस्था 'जनता' के घटक दलों को ध्यान में रखकर की गई। विधायक तीन सौ और आरक्षित सीटें 3500। एक कंडक्टर ने हँसते हुए कहा, "पाँच सीटें भी घटक दलों के हिसाब से रखी गई हैं।"

संदर्भ—चौधरी चरणसिंह का !

ब्रिटेन की राजनीति के तेजस्वी नक्षत्र विजान एन्युरिन बेवान ने हैराल्ड विलसन कैबिनेट में जगह पाने को उत्सुक, विलसन के विरोधी रिचर्ड क्रॉसमैन से कहा था—"कैबिनेट (मंत्री परिषद) में शामिल होने के दो ही तरीके हैं : या तो पेट के बल रेंगते हुए सीढ़ी चढ़ो या उनके मुँह पर लात मारो। परन्तु मेहरबानी कर दोनों तरीकों को मिक्स मत करो !"

19 फरवरी '79

प्रकाश और दृष्टि···

शालीग्राम को किलोग्राम में वोट दो।

जबलपुर में नौदरा पुल पर यह नारा पढ़ने को मिला। नगर निगम चुनावों के बाद कुतूहलवश पता लगाने पर मालूम हुआ, किलोग्राम की जगह एक छटाँक वोट भी शालीग्राम को नहीं मिले थे।

चूँकि राजनांदगाँव में पालिका चुनाव का माहौल है और तुमने बार-बार अपने कालम में उम्मीदवारों द्वारा बदतमीजी के साथ अपने नाम दीवारों पर पोतकर खराब करने पर गुस्सा जाहिर किया है। मैं उसके दूसरे मजेदार पहलू पर लिखना चाहता हूँ। बच्चे और युवक जब इन नामों से खिलवाड़ करते हैं उसकी कुछ बानगी यों है—

रामसहाय पांडे के नाम से कुछ मात्राएँ मिटाकर बना दिया गया रामरहा पांडे, मदन तिवारी में मामूली परिवर्तन कर मटन तिवारी, मोहन महाराज का ज मिटाकर मोहन महार।

ऐसे अनेक शोधयुक्त सूत्र शहर की दीवारों पर देखने को मिल सकते हैं। किसी के पक्ष-विपक्ष का प्रश्न नहीं है।

मुझे याद है, बम्बई राज्य का जब विभाजन हो रहा था गुजरात महाराष्ट्र की सीमा का एक जिला डांग विवाद का विषय था। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के नेता कॉमरेड डांगे बम्बई से उम्मीदवार थे। अंग्रेजी में नारा लिखा था, वोट फार डांगे ! दूसरे दिन पढ़ा तो इसे मिटाकर वोट फार डांग बना दिया गया था। तीसरे दिन पूँजीवाद के किसी पक्षधर ने

उसको वोट फार डेंजर बना दिया था।

देश के पैमाने पर अभी चुनावों में सब जगह जनता पार्टी के समर्थक युवक नारे लगाते हैं—कांग्रेस ने क्या किया, देश को बर्बाद किया।

जवाब में उछल-उछलकर कांग्रेसी युवक कहते हैं—जनता पार्टी ने क्या किया, देश को बर्बाद किया।

ये दोनों नारे अपनी जगह सही हैं। और चुनाव के भावावेश को छोड़कर यदि युवक इस पर सही ढंग से बहस करें तो निश्चय ही वे तीसरा विकल्प ढूँढ़ निकालेंगे।

परन्तु मैंने अपने शहर के बलदेव बाग क्षेत्र में निर्दलीय उम्मीदवार का एक नारा पढ़ा, बत्तीस वर्षों के पार्टियों के शासन ने देश को बर्बाद किया इसलिए निर्दलीय को जिताओ।

निर्दलीय उम्मीदवार और शुद्ध साहित्य की बात से मुझे सख्त चिढ़ है। मैं उन्हें ही सबसे ज्यादा चतुर राजनीतिज्ञ और खतरनाक मानता हूँ। साहित्य में शुद्धता और राजनीति में दल विहीनता यह आर० एस० एस० का चलाया हुआ नारा है। आम आदमी इस सीधेपन की बात से बड़ा प्रभावित होता है, पर वह भूल जाता है कि राष्ट्रीय स्वयं संघ का तैयार किया कार्यकर्ता केवल जनसंघ (अब भारतीय जनता पार्टी) में ही जाता है, अन्य पार्टी में नहीं। इसका दूसरा अर्थ है तर्क द्वारा वास्तविकता जानने की चेष्टा मत करो, भ्रम में बने रहो। जबकि प्रजातंत्र का मूल आधार ही जागरूकता और प्रगति के लिए बहस है। चूँकि तर्कसंगत चर्चा में यथास्थिति रखने के हामी टिक ही नहीं सकते, इसलिए वे साहित्य में शुद्धता की बात करते हैं।

क्या वजह है कि देश के पैमाने पर कोई प्रमुख साहित्यकार, कलाकार, चित्रकार, फिल्म निर्देशक आदि यथास्थिति रखने वाले (जनसंघ जैसी जमातों) वर्ग का नहीं है?

उस दिन भोपाल से के० के० एक्सप्रेस के जिस डिब्बे में बैठा उसका टी० टी० हाकी का खिलाड़ी था, अपने यहाँ भी आ चुका है, इसलिए थोड़ी देर में ही एक-दूसरे को पहचान लिया और हाकी पर देश से लेकर

राजनांदगाँव तक की चर्चा होती रही ।

मैं बर्थ में अकेला बैठा था। तब एक हिप्पी आया । उसने बताया कि वह फ्रेंच है और वह कामचलाऊ अंग्रेजी जानता है। उसे रात के सफर के लिए बर्थ चाहिए थी । मैंने कहा—मैं नागपुर में उतरूँगा और यह बर्थ सम्भवत: खाली है । उसने भाषा की दिक्कत के कारण मेरी सहायता माँगी। पूरे सुझाव पर टी० टी० ने उसे बर्थ दे दी । उसने 'इंडरेल' पास निकाला और दूर से बताकर तुरन्त अपनी जेब में रख लिया ।

इंडरेल पास विदेशी मुद्रा के एवज में एक निश्चित अवधि के लिए भारतीय रेल देती है। अवधि के दौरान पूरे देश में कितनी भी दूरी तक और रेल सुविधाओं—रिजर्वेशन आदि के लिए कोई अतिरिक्त चार्ज दिए बगैर विदेशी यात्रा कर सकते हैं।

इंडरेल पास की बाबत सुना जरूर था—उत्सुकतावश देखने के लिए माँगा। उसने टालने की कोशिश की पर ज्यादा अनुरोध करने पर झिझकते हुए उसने मुझे दिया । टी० टी० तब तक जा चुका था।

पास पर उसके नाम के नीचे राष्ट्रीयता जर्मन लिखी थी । मैं चौंका। यह तो अपने को फ्रेंच कहता है ? पास पर अवधि केवल सात दिन लिखी हुई थी । फोल्डरनुमा पास में भीतर सूचनाएँ और अंतिम पृष्ठ पर जारी करने की तारीख 18 नवम्बर '78 लिखी हुई थी । मैंने तारीख की ओर इशारा किया तो उसने पास झपटकर मेरे हाथ से खींच लिया और होंठ पर उँगली रखकर चुप रहने को इशारा किया। अब मुझे समझ में आया। वह सिगरेट पूरी कर बिना कुछ कहे दूसरे डिब्बे में चला गया । मुझे पहले तो संदेह हुआ कि यह कहीं कोई विदेशी जासूस तो नहीं ।

इतने में टी० टी० पुन: आकर मेरे पास बैठा। मैंने पूछा—यार, तुमने उसका पास ठीक से देखा नहीं—वह तो बोगस पास है। टी० टी० ने कहा—विदेशी हमारा मेहमान है इसलिए और आपके सुझाव पर मैंने उसे बर्थ दे दी। इंडरेल पास पर और कोई चार्ज लगता नहीं इसलिए पास के नम्बर की ही जरूरत थी, वह मैंने देख लिया।

मैंने उसे उक्त पास और हिप्पी की संदेहास्पद स्थिति के बारे में बताया । वह भी चौंका। मेरे बताने पर वह उसे बाजू के कोच में ढूँढ़ने

गया।

टी० टी० ने उसका पास देखने के लिए माँगा। तब उन दोनों में थोड़ी बहस हो गई। उसने टी० टी० पर उल्टे आरोप लगाया कि बर्थ के लिए पन्द्रह रुपये दिए हैं। उसके दुर्भाग्य से सामने वाली बर्थ पर रेलवे का विजिलेंस अधिकारी भी बैठा था। मामले की गंभीरता देखते हुए उसने हस्तक्षेप किया और अपना परिचय-पत्र निकालकर हिप्पी से पासपोर्ट माँगा। पासपोर्ट पर लिखा था राष्ट्रीयता फ्रेंच। मसलन यह कि यह भाई पिछले दो माह से किसी जर्मन के समाप्त हो चुके पास पर ही सारे देश की यात्रा कर रहा था। विजिलेंस वाला टी० टी० को पन्द्रह रुपये की बात लेकर डाँटने लगा। वहाँ अच्छी-खासी भीड़ हो गई।

तब मैं भी वहाँ पहुँचा। टी० टी० को परेशानी में फँसा देख मैंने हस्तक्षेप किया। विजिलेंस अधिकारी को पूरी घटना मेरे सामने किस प्रकार घटी, बताया। टी० टी० ने इसे विदेशी है इसलिए ईमानदार होगा मानकर बर्थ दे दी और ऊपर से अपनी सिगरेट भी पिलाई। टी० टी० निर्दोष है। यदि आवश्यकता पड़े तो मैं गवाही देने को तैयार हूँ। मैंने उसे अपना विजिटिंग कार्ड दिया।

मेरी बात सुनकर वह अधिकारी और अन्य यात्री हिप्पी पर बहुत गुस्सा हुए और नागपुर में उसे पुलिस को सौंपने की बात होने लगी। नागपुर करीब था। तब उसे एक कांस्टेबल के साथ मेरे ही पास बैठने के लिए भेजा गया। उसका चेहरा उतरा हुआ था। वह मुझे सफाई देने लगा। मैंने पूछा—आखिर तुमने ऐसा क्यों किया ?

उसने कहा—मुझे बताया गया था कि भारत में भ्रष्टाचार बहुत है और रिश्वत देकर सब काम हो जाते हैं।

मैं उस विदेशी का उत्तर सुनकर अवाक् रह गया। हमारी क्या प्रतिष्ठा है विदेशों में !

यह पत्र सिगरौली स्टेशन से लिख रहा हूँ, जो मध्यप्रदेश में है और यहाँ से कोई तीस किलोमीटर दूर उत्तरप्रदेश में सुपरथर्मल बन रहा है, उसी काम से आया हूँ। दोनों प्रदेश के आर० टी० ओ० में झगड़ा चल रहा है। इसलिए अपने प्रदेश से यहाँ आने को कोई बस सेवा उपलब्ध नहीं है।

कटनी से सुबह एक पैसेंजर चलती है जो शाम छः बजे के बाद यहाँ पहुँचती है और दूसरे दिन सुबह वही ट्रेन वापस जाती है। कुल मिलाकर बात यह है कि मैं कल रात भी वेटिंगरूम में था और आज भी रहूँगा। इतनी छोटी जगह है कि गाँव में कोई होटल या स्टेशन पर रिटायरिंग रूम भी नहीं है।

वेटिंगरूम अभी बना है इसलिए उसमें फर्नीचर के नाम पर केवल एक टेबल है, जिस पर आप न सो सकते हैं न बैठ सकते।

पोर्टर ने कल सूखी घास (पैरा) ला दी थी उसी पर चादर बिछाकर सोया था। अभी कुछ देर बाद वह पुनः ला देगा। इसी दौरान यह सतरें लिख रहा हूँ।

कल पूरे स्टेशन में केवल तीन आदमी थे—सहायक स्टेशन मास्टर, पोर्टर और मैं। आज किसी ठेकेदार के यहाँ जा रहे बीसेक मजदूरों का काफिला है जो छत्तीसगढ़ के हैं—पुरुष और स्त्रियाँ। अपनी फटी-पुरानी गुदड़ियाँ, चादरें ओढ़कर फर्श पर लेटे हैं। बुकिंग आफिस के सामने तथाकथित सेकंड क्लास वेटिंग रूम में जो एक छत वाला पैसेज मात्र है, दरवाजे का तो प्रश्न ही नहीं है।

मैंने छत्तीसगढ़ी में कुछ बात करनी चाही—पर मेरे साहब या ठेकेदार होने का संदेह है उन्हें, इसलिए टालते रहे। कुछ जमा नहीं। गुजरात और राजस्थान का आदमी धनी बनने के लिए दूसरे देश-प्रदेश में जाता है और ये हमारे छत्तीसगढ़ के मजदूर दो-चार रुपये रोज कमाने, परिवार को जिंदा रखने के लिए—आसाम के चाय बागानों से लेकर पंजाब के खेतों में काम करने जाते हैं, और क्या पाते हैं?

पूरे स्टेशन पर सन्नाटा है जो आने-जाने वाली मालगाड़ियों की घड़घड़ाहट से टूटता रहता है।

फैली हुई चाँदनी मैली है, छाये बादलों के कारण। इसलिए दूर तक नहीं दीखता। कुछ गज की दूरी के बाद आकृतियाँ अस्पष्ट और भ्रमोत्पादक हो जाती हैं। दूर जो टिमटिमाती लाइटें दिख रही हैं वही होटल हैं। खाना वहीं मिलेगा। चारों ओर ऊँची पहाड़ियों के बीच एक ऊँचे टीले पर यह स्टेशन है। नीचे उतरने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं—जिनके पास

कुछ खानाबदोश (जिन्हें हम ईरानी कहते हैं) लोगों के तंबू लगे हुए हैं। वहाँ अभी कुछ चूल्हे जल रहे हैं—और खंजरी पर कोई युगल कुछ गा रहा है।

वे खानाबदोश हैं—छत्तीसगढ़ के मजदूर भी जो रोजी के लिए घूमते हैं और शायद मैं भी। पर हम खानाबदोश केवल इसलिए नहीं कहलाते कि हमारे सबके पास अपनी जड़ें बताने के लिए किसी गाँव में झोंपड़ियाँ हैं, मकान हैं। उनको किसी एक जगह से प्यार नहीं है—पर हमें है, केवल यही फर्क है।

प्रसिद्ध उपन्यासकार हेनरी मिलर ने एक जगह लिखा है—वास्तव में पूरी सृष्टि प्रकाश में तैर रही है। हर वस्तु सजीव और आलोकित है, मनुष्य भी अक्षुण्ण प्रकाश से प्रभावित है। परन्तु कितनी अजीब बात है कि मनुष्य के ही मस्तिष्क में अँधेरा है।

कुछ ज्यादा प्रकाश—कुछ ज्यादा दृष्टि (इस दुनिया में) हुई और वह व्यक्ति मानव समाज के लिए अयोग्य करार दिया जाता है। ऐसी दृष्टि होने का पुरस्कार है—पागलखाना या सलीब पर टाँगा जाना।

लाल पत्थरों में लिखा इतिहास

जय गुरुदेव !

सतयुग आगमन महायज्ञ बमभोले की नगरी काशी में।

दूसरी जगह लिखा है—सतयुग अवश्य आएगा…और हर किसान की एक बीघा जमीन में सौ मन अनाज पैदा होगा।

यज्ञ सम्पन्न हो गया। हजारों रुपये की आहुति दी गई—लाखों का चन्दा वसूला गया। लाखों की बात मैं इसलिए कर रहा हूँ कि मुझे यह पता नहीं कि कहाँ से कितना वसूला गया। उत्तरप्रदेश से लेकर राजस्थान और हरियाणा के दूर-दराज गाँवों की दीवारों पर हर जगह ऐसा ही लिखा देखा। बाजू में कहीं-कहीं पढ़ने को मिला, किसान रैली में दिल्ली चलो। रैली चौधरी साहब वाली।

इधर किसान को आश्वासन है—उधर किसान को आह्वान है।

यज्ञ तो 22 फरवरी को समाप्त हो गया। सतयुग आएगा। किसान बेचारे राह देख रहे हैं—एक बीघे में सौ मन अनाज इस साल नहीं तो अगले साल तो होगा ही ! और जब होगा तभी साहूकार से छुट्टी मिलेगी—घर में भी कुछ खाने को बचेगा ? छोटा किसान यही सोचता है।

सतयुग तो आने वाला है—हमने जो हवन में डालने को पाँच किलो अनाज दिया है। वसूलने वाले कह गए थे, जो देगा उसी के खेत में सतयुग आएगा। डर के मारे कि कहीं मेरा खेत छोड़कर सतयुग बाजूवाले खेत में न चला जाय—सभी ने चन्दा दिया था !

चौधरी जी की रैली में भाग लेने के लिए भी किसानों ने चन्दा दिया। बड़े किसान ने पैसा दिया, और जो गरीब था वह रैली को सफल बनाने को दूसरों के पैसे पर या कंधे पर भाग लेने दिल्ली गया। किसान की हालत सुधारने का आश्वासन जो था।

एक ओर धर्म का डर था, दूसरी ओर सत्ता का। डर तो छोटे लोगों को ही लगता है, मुक्ति के ख्वाब भी वही देखते हैं। दोनों ने, गुरुदेव और चौधरी जी ने किसानों को ही पकड़ा था—यह एक संयोग ही था··· अंधविश्वास का दोनों ओर से जमकर दोहन हुआ। यज्ञ हो गया···रैली हो गई, किसान इन्तजार कर रहा है तरक्की का। तरक्की[1] से मैं अफगानिस्तान के प्रधान मंत्री की बात नहीं कर रहा, वह तो दरअसल किसानों को अंधविश्वास से और सामंतवाद से, जमींदारों से निजात दिलवा रहा है—मुक्ति दिलवा रहा है।

जाड़ा बहुत लम्बा खिंच गया है। मार्च का पहला हफ्ता फिर भी ऊनी कपड़े पहनने पड़ते हैं। रात को कहाँ तो पंखा लगाकर सोते थे—अभी लिहाफ की जरूरत पड़ती है। यहाँ जो हवा के तेज थपेड़े चलते हैं, शाम के बाद बहुत ठंडे हो जाते हैं।

अभी कुछ देर पहले चमकता हुआ सूरज पश्चिमी आकाश में नीचे उतर रहा था, नारंगी रंग का हो चला था। मैं उसे लाल रंग में आग के गोले की तरह अस्त होता देखना चाहता था। इतने में कुछ तेज हवा चली और चंद मिनटों में ही न जाने कहाँ से घने स्लेटी रंग के बादल पूरे आसमान पर छा गये। सूरज इसके बीच कहाँ उलझ गया है पता नहीं। दूर आकाश के कोने में बिजली कौंधती है। हवा काफी नम हो चली है। कहीं बारिश हो रही है, कहीं हो चुकी है।

डूबते सूरज को देखने का मोह छोड़कर मैं बाहर निकल आता हूँ। मुश्किल से एक डेढ़ फर्लांग चलकर एम० आई० रोड के उस हिस्से में पहुँचा हूँ जहाँ शो-केसों में लुभावने ढंग से चीजें रखी गई हैं—नुमाइश के

---

1. अफगानिस्तान में क्रांति के पश्चात पदासीन शासनाध्यक्ष मुहम्मद तरक्की।

लिए दो-तीन बड़े नामी रेस्तराँ हैं। दफ्तर से लौटने वाले बाबुओं की साय-किलों के समूह गुजर रहे हैं।

एकाएक बड़ी-बड़ी बूंदें टपाटप आसमान से बरसनी शुरू हो जाती हैं और जैसे कुहराम मच जाता है। रिक्शे और सायकिलें तेज दौड़ने लगती हैं। गाड़ियाँ साइड में रोककर शीशे चढ़ाये जा रहे हैं। दुकानों की आगे बढ़ी छतों और बरामदों की ओर दौड़कर लोगों ने साँस ली है। मूँगफली, चना बेचने वाले भी अपने टोकरे लेकर यहाँ आ गए हैं मैं जहाँ खड़ा हूँ। दूसरी ओर से भागकर कुछ पढ़ने वाली लड़कियाँ दौड़कर आयी हैं—दुपट्टों और रूमालों से चेहरा पोंछते हुए हँसती जा रही हैं और जोर से बातें कर रही हैं। सबकी परेशानी है, बारिश कब थमेगी ? मुश्किल से पाँच-सात मिनट हुए होंगे, जैसी शुरू हुई थी बारिश यकायक बन्द हो जाती है। हवा में एक नम महक फैल जाती है लोग तुरन्त बिखर जाते हैं अपनी-अपनी राह तेज कदमों से चल पड़ते हैं।

आगरा से जयपुर के बीच समतल मैदानी इलाका है। हरे-भरे लहलहाते खेत दूर-दूर तक दिखाई देते हैं। बीच-बीच में कहीं कुछ ऊँची पहाड़ियाँ व टीले ही दृश्य की एकरसता को तोड़ते हैं। ये पहाड़ियाँ भी विचित्र हैं। इन पर जंगल नहीं होते, बड़े झाड़ नहीं होते। इन पहाड़ियों में लाल परतदार पत्थर होते हैं—दो इंच मोटे और लंबे। इसे आसानी से काटकर निर्माण के अनेक उपयोग में लाया जाता है मकान की छतों से लेकर फर्श तक, किलों की प्राचीरों से लेकर किसान के खेत तक इसको तरह-तरह के उपयोग में देखा जा सकता है।

आगरा, जयपुर, दिल्ली लगभग समकोण, समबाहु त्रिभुज के तीन छोर हैं। यों तो पूरे उत्तर भारत में पटना से लेकर अमृतसर तक इतिहास बिखरा पड़ा है पर इस त्रिभुज के बीच और आसपास न जाने कितनों की हार, कितनों की जीत की कहानियाँ लिख रखी हैं इन लाल परतदार पत्थरों ने। संगमरमरी ताज की खूबसूरती उनके चारों ओर बने लाल पत्थरों की दीवारों, प्रवेश द्वारों, मीनारों के कारण उभरकर उजागर हुई है। जयपुर को गुलाबी शहर, दिल्ली-आगरा को लालकिले, फतहपुर सीकरी को बुलंद दरवाजे आदि इन्हीं पत्थरों ने दिये हैं। नूरजहाँ, मुमताज

महल, अनारकली आदि रोमैंटिक कहानियाँ, तानसेन और बाबा हरिदास का संगीत—ये सब इन्होंने सँजोकर रखा है।

उस दिन बस में मेरे साथ एक प्रोफेसर थे। बातचीत के दौरान मैंने कहा—आपके इस क्षेत्र में सब कुछ है, लोग भी अपेक्षाकृत समृद्ध, पर प्रकृति नहीं है।

उन्होंने विस्तार से मेरी बात समझनी चाही। मैंने कहा— हमारे यहाँ छत्तीसगढ़ में प्रकृति समृद्ध है। प्राकृतिक सौन्दर्य है। इस मौसम में जंगलों में टेसू के फूल बेशुमार ऊग आते हैं, जंगलों में बासंती उल्लास छा जाता है। कहीं-कहीं तो टेसू के लाल केसरी फूल इस कदर छाए रहते हैं लगता है, वन बासंती उल्लास में जल उठे हैं। घने जंगल हैं, नदियाँ हैं, नाले हैं।

पर उन्होंने एक ही बात में मुझे निरुत्तर कर दिया—तो क्या हुआ, लोग तो गरीब हैं। वे हिन्दी साहित्य के अध्यापक थे।

पाकिस्तान के भूतपूर्व प्रधानमंत्री भुट्टो ने मौत का इंतजार करते हुए एक किताब लिखी है—'इफ आई एम एसेसिनेटिड' (यदि मेरी हत्या होती है)। उसमें उन्होंने पं० नेहरू को उद्धृत किया है।

जीवन मनुष्य की अमूल्य निधि है और चूँकि वह उसे केवल एक ही बार जीने के लिए मिलती है इसलिए उसे हमेशा बुज़दिल या बेमतलब जीवन की शर्मिंदगी से बचने के लिए इस तरह जीना चाहिए कि वर्षों की अर्थ-हीनता के मानसिक संत्रास से बच सके और मरते वक्त कह सके कि मेरी पूरी जिंदगी मेरी दुनिया के सबसे महत्त्वपूर्ण काम मानव जाति की मुक्ति में लगी रही।

11 मार्च '79

भागदौड़ के दौरान...

सिकन्दराबाद और हैदराबाद के बीच ट्रेन खड़ी है । हमारा डिब्बा लगभग खाली हो चुका है । नीरव शांति है । सूरज निकलने को अभी समय है। पूरब का क्षितिज नारंगी हो चला है। हवा बिल्कुल नहीं चल रही है। इसलिए झील का पानी जैसे निस्तब्ध है । पानी पर तैर रहा धुआँ ठहरा हुआ है । झील का निश्चल पानी आसमान के रंगों में रँग चला है । बीच-बीच में एकाध चिड़िया आसमान से जैसे टपकती हुई तेजी से झील के पानी की ओर लपकती है । पानी की सतह को छूती हुई सूँ से ऊपर चली जाती है । लगता है, पूरी निस्तब्धता में केवल वही जिन्दा है ।

परसों दिल्ली से नागपुर आया था तो जाड़े का अहसास होता रहा। डिब्बों की खिड़कियाँ खोलने की हिम्मत नहीं होती थी । सुबह पटरी के आसपास हरी घास पर ओस की बूँदें चमक रही थीं । कहीं-कहीं हलका सा कुहरा भी था ।

और आज यहाँ शीशे की खिड़की हटाने पर भी ताज़ी हवा का झोंका नहीं मिला ।...

...महानगरों में अखबार खरीदने और पढ़ने का मजा कुछ और ही है । दिल्ली में कनाट प्लेस में जहाँ ठहरता हूँ—थोड़ी दूर 'स्टेट्समैन' और 'पायोनियर' दैनिकों के कार्यालय हैं । दूसरी ओर थोड़ी दूरी पर ही 'हिन्दुस्तान टाइम्स' की मल्टी स्टोरीज़ बिल्डिंग है ।

ट्रेन पकड़नी थी । सुबह पाँच बजे होटल में चाय की व्यवस्था

संभव न थी। सामने 'काकेदी', 'भापेदी' आदि प्रसिद्ध पंजाबी ढाबों की कतार में एकाध होटल में चाय मिलने की संभावना थी। पर वहाँ भी भट्ठियाँ जली न थीं। पता चला कि प्रेस के पास मिल जायेगी।

तीखे जाड़े में—घने कुहरे के बीच चौड़ी सड़कों पर चाय के एक कप की तलाश में घूमना एक मजेदार अनुभव था। वहाँ पहुँचा। दूर से ही काफी शोर सुनाई भी देता था।

देखा, वहाँ तो बाजार सा लगा हुआ है। कम से कम हजारेक अखबार बेचने वाले अपनी साइकिलें बेतरतीब खड़ी किए कुछ ले-दे रहे हैं। वहाँ बहादुरशाह जफर मार्ग और दिल्ली की अन्य जगहों से प्रकाशित होने वाले दैनिकों के बंडल भी पहुँच जाते हैं। पत्रिकाओं के होल-सेलर भी यहाँ जमीन पर मिट्टी के तेल की ढिबरियों और कंदीलों की रोशनी में पत्रिकाओं के ढेर लगाए बैठे रहते हैं। हॉकर अपनी जरूरत की पत्र-पत्रिकाएँ लेते-देते हैं। पाँच-सात चाय वाले टेंपरेरी दुकानों में स्टोव पर बनाकर सैकड़ों कप चाय का धंधा कर लेते हैं।

ये सभी लोग मुख्य रूप से उत्तरप्रदेश, पंजाब, हरियाणा के हैं। इसलिए स्वभावत: ज्यादा शोर मचाते हैं। चिल्ला-चिल्लाकर बातें करते हैं। ठंड को भगाते हैं। कुछ लोग अखबारों में रबर के बैंड लगाते हैं, ताकि आसानी के साथ चौथी-पाँचवीं मंजिल तक अखबार फेंका जा सके।

चाय मिली। कुछ अखबार और पत्रिकाएँ खरीदीं। मुझे लगा कि इस बाजार का शोर, इसकी चहल-पहल बम्बई के शेयर बाजार से कतई कम नहीं। परन्तु बुलियन एक्सचेंज व शेयर मार्केट में बड़ी कंपनियों के शेयर बिकते हैं। सोना-चाँदी बिकता है। करोड़ों का लेन-देन होता है। वहाँ की खबरों का एक पेज हर अखबार में रहता है। वहाँ सब सुविधाएँ हैं। टेलीफोन, टैलेक्स, एयरकंडीशंड कमरे, पंखे, प्रसाधन सब कुछ।

पर इनके लिए तो समुचित लाइट की भी व्यवस्था नहीं है। अखबार वाले सबके लिए लिखते हैं। पर खुद के लोगों के लिए स्ट्रीट लाइट भी ठीक नहीं करवा सकते। न जाने कितने वर्षों से ढिबरियों की रोशनी में अखबारों का बाजार चल रहा है—न जाने कब तक चलता रहेगा। ये सब तो बेचारे सूरज की रोशनी होने के पहले ही बिखर जाते हैं— ग्राहकों

को अखबार पहुँचाने।

उस दिन नागपुर से तमिलनाडु एक्सप्रेस में दिल्ली जाने के लिए थ्री टीयर कोच में बैठा। जहाँ बर्थ मिली, तीन तमिल सज्जन खादी के कुर्तानुमा कमीज और लुंगियाँ पहने बैठे थे। सीट के नीचे पाँच-छः सोड़े की बोतलें जैसे झाँककर उनकी चुगली कर रही थीं। कुछ बोतलें आधी भरी हुई थीं।

ट्रेन चल पड़ी। तब उनमें से एक प्रौढ़ व्यक्ति ने अंग्रेजी में कहा—यदि आपको आपत्ति न हो तो हम हमारा काम जारी रखें? अपनी बोतल बताते हुए उन्होंने पूछा। वे शराब पी रहे थे। आम तौर पर यह समझा जाता है कि दक्षिण के लोग अच्छी अंग्रेजी बोलते हैं, पर ऐसा नहीं है। सही यह है कि अधिकांश लोग बोलते हैं, पर काम चलाऊ।

मैंने हँसकर कहा—आफ कोर्स—कैरी आन। सो रहे दूसरे दो यात्रियों की ओर इशारा कर मैंने पूछा—उनको तो आपत्ति नहीं है?

—उनकी चिंता मत करिये। वे तो हमारे प्रदेश के हैं! आप भी लीजिये।

धन्यवाद देते हुए मैंने नाहीं की। लोग दिलचस्प लगे। कपड़ों से नेतानुमा।

मैंने बातचीत आगे बढ़ाते हुए पूछा—आपके यहाँ तो पूरी नशाबन्दी है—फिर आपको यह बोतल कहाँ मिली? स्टेशन पर तो नहीं मिलती।

—नहीं-नहीं, हम तो मद्रास से ही लाये हैं। नशाबन्दी है, पर मिल जाती है!

मालूम हुआ कि वे अन्ना डी० एम० के० के सक्रिय सदस्य हैं, जो वहाँ सत्तारूढ़ है और अभिनेता मुख्यमंत्री एम० जी० रामचंद्रन सख्ती से नशाबन्दी लागू करने के लिए वक्तव्य देते रहते हैं। साठ साल की उम्र में भी हीरो का रोल करने के लिए नई अभिनेत्रियाँ ढूँढ़ते रहते हैं।

मैंने कहा—जब आप सब शराब पीते हैं तो पूर्ण नशाबन्दी की बात क्यों करते हैं। क्या एम० जी० आर० नहीं पीते?

—साहब, उनके बारे में तो नहीं मालूम। पर साहब, असली बात

यह है कि शराब से गरीबों का बड़ा नुकसान होता है। उनका पैसा बचाने के लिए ही नशाबन्दी लागू की गई है। प्रधानमंत्री देसाई भी तो नशाबंदी चाहते हैं।

मैंने उलटकर कहा—शराब से क्या गरीबों का ही नुकसान होता है? और क्या उनका पैसा बचाने, उन्हें समृद्ध बनाने का यही एक रास्ता है?

"अरे साहब...! शराबबन्दी की वजह से तो तमिलनाडु और गुजरात में वारनिश, स्पिरिट, यूरिया और न जाने किस-किस चीज से बनी अवैध शराब पीकर हर साल हजारों गरीबों के मरने की खबरें हम पढ़ते हैं। हाँ, आपके मुख्यमंत्री वाकई अच्छे कलाकार हैं। नशाबन्दी से मोरारजी खुश, चिकमंगलूर में समर्थन से इन्दिरा खुश! क्या बढ़िया राजनीति है।

बात शराबबन्दी की है, तो दूसरे राज्यों की भी बात कह लूँ। राजस्थान में बजट के पहले बड़ा हंगामा था। सर्वोदयी नेता गोकुलभाई भट्ट नशाबन्दी की माँग को लेकर आमरण अनशन पर बैठने की घोषणा कर चुके थे, वित्त मंत्री आदित्येन्द्र ने इसी बात पर मुख्य मंत्री शेखावत से इस दुराग्रह के विरोध में त्यागपत्र देने की घोषणा कर दी।

मुख्यमंत्री शेखावत के सम्बन्ध में प्रसिद्ध यह है कि उनका सचिवालय दिल्ली में है। राजस्थान मंत्रिपरिषद की बैठक दिल्ली में होती है। तो दिल्ली में शेखावत की घोषणा के बाद हलचल शुरू हुई। बजट के पहले पर्दे के पीछे कुछ मान-मनौवल हुआ।

कुल मिलाकर नतीजा यह था कि शराब एक्साइज भी नहीं बढ़ाई गई। चार जिले सूखे (ड्राई) घोषित किए गए। राजस्थान में त्योहारों पर मासांत और एक तारीख को शराब की दूकानें अधिकृत रूप में बन्द रहती हैं। पर मजे की बात है कि दुकान के बाहर झोले में रखकर बड़े इत्मीनान से बेची जाती है।

इस बार के ठेके पिछली बार से बीस प्रतिशत ज्यादा में बिके। शासकीय सूचना के अनुसार ही पिछले दो वर्षों में शराब की बिक्री की मात्रा में तीस प्रतिशत की वृद्धि हुई। यह है नशाबन्दी की प्रगति!

केन्द्रीय बजट के बाद नागपुर से लेकर पूरे उत्तर भारत में एक बात यह देखने को मिली कि सभी चीजों के दामों में बेहिसाब वृद्धि हुई है। हर शहर में जहाँ ऑटो-रिक्शा या टैक्सी का इस्तेमाल करना पड़ा, मोटर में सवाया-ड्योढ़ा किराया वसूला जा रहा है। पेट्रोल के दाम में औसत 55 पैसे वृद्धि हुई है, पर हर किलोमीटर पर पचास पैसे ज्यादा माँगे जा रहे हैं। सिगरेट, टूथपेस्ट, साबुन सभी चीजों के दाम मनमाने वसूले जा रहे हैं। राजधानी दिल्ली में तो जैसे लूटने की खुली छूट दी गई है।

उसके विपरीत हैदराबाद में मेरा अनुभव सुखद रहा। ऑटो वाले आज भी वही किराया ले रहे हैं। सिगरेट उसी दाम पर बिक रही है। एक ऑटो वाले को पैसे देते हुए मैंने पूछा— आप लोग ज्यादा पैसे नहीं ले रहे हैं ?

—ज्यादा लेंगे, साहब ! पर शासन नया रेट तय करेगा तभी तो। एक अप्रैल से लागू होगा। वैसे भी प्रति किलोमीटर पाँच-सात पैसे से ज्यादा रेट नहीं बढ़ेगा। एक लीटर में ऑटो कोई बीस किलोमीटर चलती है।

आन्ध्र भी तो हिन्दुस्तान में ही है। क्या बजट से अछूता रह गया ? उत्तर और दक्षिण में इतना फर्क क्यों ?

भुट्टो को फाँसी दी जायेगी या नहीं ? यह सवाल जगह-जगह सुना। उसे फाँसी दिये जाने के पक्ष में एक भी राय सुनने को नहीं मिली।

पर मुझे वर्षों पूर्व भवानी भट्टाचार्य की कहानी 'वन हू राइड्स ए टाईगर' की याद आ गई।

वह जो शेर की सवारी करता है, बड़ी दुविधा में रहता है। नीचे उतरा और शेर ने उसे खाया। जाहिर है, शेर पर आखिर कब तक बैठे रहोगे ? जरा ढीले पड़े और उसने पटका। पाकिस्तान के मार्शल ला प्रशासक जिया उल हक की स्थिति वैसी ही है। भुट्टो का मामला शेर की सवारी बन गया है।

पिछले दो महीनों में ईरान और अन्य मुस्लिम देशों में जो राजनीतिक परिवर्तन हुए हैं, उससे मुझे लगता है, भुट्टो को बचाने को प्रभावशाली

अपील करने वालों की संख्या कम हुई है।

जिया उल हक के सामने भुट्टो को फाँसी देने के सिवा और कोई रास्ता नहीं बचा है। जाहिर है, चाहे कैसे भी हो, पाकिस्तान का एकमात्र निर्वाचित प्रधानमंत्री सैनिक तानाशाही के हाथ मारा ही जायेगा।

स्व० मौलाना अबुल कलाम आजाद ने 1922 में स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान अंग्रेजी हुकूमत द्वारा चलाये गये एक मुकदमे में अपने बयान में कहा था—

"न्यायालय की सत्ता एक ऐसी ताकत है, जिसको न्याय और अन्याय दोनों के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। सही सरकार के हाथ में यह अधिकार और न्याय की रक्षा का श्रेष्ठ हथियार है। परन्तु एक दमनकारी तानाशाह हुकूमत के हाथों में बदला लेने और अन्यायपूर्वक कुचलने के लिए इससे बढ़िया कोई साधन नहीं है।"

लड़ाई के मैदान के बाद दुनिया के इतिहास में सबसे बड़े अन्याय की कार्यवाहियाँ अदालतों में ही हुई हैं।

कानूनी अदालतों की असमानताओं, विसंगतियों की सूची बहुत लंबी है और इतिहास ने अभी ऐसी अन्यायपूर्ण भ्रूण-हत्याओं के शोकगीत गाना बंद नहीं किया है।

18 मार्च '79

बेचारो छत्तीसगढ़ एक्सप्रेस !

छत्तीसगढ़ एक्सप्रेस के देर से चलने और यात्रियों की परेशानी के सम्बन्ध में समाचार-पत्रों में इस हफ्ते पढ़ने को मिला।

डाउन या अप छत्तीसगढ़ एक्सप्रेस का राइट टाइम पर चलना जैसे अस्वाभाविक लगता है।

उस दिन केवल दुर्ग तक ही जाना था, पता चला ट्रेन दो घंटे लेट है। स्टेशन पर अनेक परिचित चेहरे इन्तजार की बोरियत से बुझे-बुझे से लगते थे। डिब्बे में पं० रामकृष्ण शुक्ल भी बैठे। उन्होंने इस ट्रेन के मामले में अपने एक-दो अनुभव बताए कि किस प्रकार चेन खींचकर छात्र जगह-जगह गाड़ी को रोकते हैं। इसी बातचीत में दुर्ग पहुँच गए। उनकी चिंता थी कि रायपुर कब पहुँच पाएँगे, क्योंकि छोटी-सी यात्रा का अनिश्चित दौर तो अब शुरू हो रहा था।

यों इस ट्रेन के लेट होने के सतही तौर पर दो प्रमुख कारण बताए जा सकते हैं : लिंक एक्सप्रेस होने के कारण रायपुर में वाल्टेयर कोच के लिए रुकना, दूसरा छात्रों द्वारा दुर्ग-रायपुर के बीच जगह-जगह जंज़ीर खींचना।

दो व्यक्तिगत अनुभव काफी पुराने होने के बावजूद भी आज उनको इस संदर्भ में दुहराना चाहता हूँ।

कानपुर से झाँसी आने के लिए शाम की ट्रेन में बेतहाशा भीड़ की वजह से मजबूर होकर फर्स्ट क्लास में बैठा। पुराने फर्स्ट क्लास के कूपे में

आई० पी० एस० युवा पुलिस अधिकारी सरदारजी बीवी के साथ सामने वाली बर्थ पर बैठे थे। कुछ देर में सात-आठ कालेज के छात्र आए। मेरी एवं उनकी बर्थ पर बैठकर जोर-जोर से ठहाके लगाते हुए बातें करने लगे।

सरदार जी से रहा नहीं गया, उन्होंने पूछा—आप लोगों के पास फर्स्ट क्लास का टिकट है? एक लड़के ने कहा—यहाँ टिकट लेता ही कौन है! और बदतमीजी के साथ हँसने लगा।

सरदार जी नीचे उतरे, टी० टी० को बुला लाये। साथ में पुलिस के दो जवान थे। लड़कों को नीचे उतरना पड़ा। एक लड़के ने सरदारजी को देख लेने की धमकी दी। सरदारजी ने दरवाजे के सेफ्टी लैचेस बन्द कर दिये ताकि और कोई न आ सके। ट्रेन चल पड़ी। दसेक मिनट बाद एक स्टेशन पर गाड़ी रुकी। वे ही लड़के डिब्बे के करीब आये और सरदार जी को गालियाँ देने लगे। हमने खिड़की बन्द कर दी। ट्रेन फिर चल पड़ी।

कुछ देर बाद दूसरे स्टेशन पर गाड़ी रुकी। तब उन लड़कों के साथ और कुछ लड़के लाठियाँ लेकर आने लगे। कुछ ने दूर से पत्थर फेंके। खिड़कियों के शीशे फूट गए। जाली वाली खिड़की बन्द करने का समय ही न था। जाड़े के दिन थे, अँधेरा घिरता आ रहा था।

सरदार जी बेहद गुस्से में नीचे उतरकर उनसे निपटने की बात करने लगे। उनकी पत्नी जो रुआँसी हो गई थीं अब वाकई रोने लगीं। मैंने उन्हें समझाया—नीचे उतरने और उलझने से उत्तेजना बढ़ेगी और यदि भीड़ हिंसक हो गई तो कुछ भी हो सकता है। घटनाएँ बड़ी तेजी से घट रही हैं।

इसी बीच ट्रेन छूटने की सीटी बजी। ट्रेन चली लेकिन कुछ कदम के बाद रुक गई। किसी ने जंजीर खींच दी थी। अँधेरा हो चुका था। हमने डिब्बे में रोशनी भी नहीं की थी।

खिड़कियों से उनकी ओर लाठी चलने लगी। बचने का केवल एक ही रास्ता था, बर्थ के नीचे छिप जाओ या ऊपर वाली बर्थ पर चढ़कर बैठो। मेरी बात मानकर वे दोनों ऊपर की बर्थ पर और मैं दूसरी पर बैठा। शोर-शराबे और गाली के सिवा और कुछ सुनने को था नहीं। कोई

आधे घंटे के बाद ट्रेन फिर चल पड़ी, राहत की साँस ली ।

मैं नीचे उतरा । पूरे डिब्बे में काँच बिखरे पड़े थे । एक-दो लकड़ियाँ वे छोड़ गये थे । सरदार जी भी नीचे उतरे, रो रही अपनी बीवी पर वे नाहक गुस्सा होने लगे ।

स्टेशन की लाइट दिखने लगी । ट्रेन रुकते ही मैं नीचे उतरूँगा, आप तुरन्त दरवाजा बन्द कर देना—मैंने कहा । ट्रेन रुकते ही मैं उतरकर सीधा स्टेशन मास्टर के आफिस में गया और पूरे गुस्से के साथ कहा—अजीब बात है, पिछले स्टेशन पर एक घंटे तक हमारे डिब्बे पर हमला होता रहा, कोई रोकने वाला भी नहीं था उनको । कोई देखने भी नहीं आया कि हम घायल हैं, जिन्दा हैं या मर गए ! इतने में ही गाड़ी का गार्ड भी वहाँ आ गया । दोनों हाथ जोड़कर उसने कहा—वो लड़के तो वहीं के थे उतर गए । अब कुछ नहीं होगा । साहब, यह कम्प्लेन्ट बुक है आप सब कुछ लिख दीजिए । हम लाचार हैं । रेलवे बोर्ड प्रोटेक्शन देती नहीं है···यहाँ तो हर रोज यही होता है । साल भर में दो-चार टी० टी० या रेलवे स्टाफ के लोगों का खून हो जाता है···साहब, हम तो भगवान का नाम लेकर यहाँ समय बिता रहे हैं, आप गुस्सा हम पर उतारिये । पर हम कुछ नहीं कर सकते ।

सहानुभूति बताते हुए उन्होंने हमें दूसरे डिब्बे में बिठाया । पानी पीने को दिया । स्थानीय लोगों व रेलवे व्यवस्था को कोसते रहे । बार-बार हससे शिकायत दर्ज करने का अनुरोध करते रहे ।

शेष यात्रा में सरदार जी गुस्से में चुप तने हुए बैठे रहे । उनकी पत्नी बेचारी हतप्रभ-सी बैठी रही, बीच-बीच में आँसू पोंछ लेती थी ।

और मैं इस दृश्य से बचने के लिए बाहर अँधेरे में देखने का मिथ्या प्रयास करता रहा ।

दूसरी घटना···

पश्चिमी बंगाल के उत्तरी छोर क्यिुल से कलकत्ता आने के लिए बैठा। मेजबान दोस्त ने फर्स्ट क्लास में बिठा दिया था। टी० टी० ने कहा—सुबह कलकत्ते तक कोई आएगा नहीं, आप अन्दर से लाक कर आराम से सो जाइये।

रात के तीन बजे के लगभग शोरगुल और कुछ लोगों के दरवाजा ठोकने से जाग गया। शोर इतना था कि यह सन्देह हुआ जैसे कोई दंगाइयों की भीड़ हो। दरवाजे के करीब जाने पर स्त्री-पुरुष की मिली-जुली आवाजें, चिल्लाहट सुनाई पड़ीं। मैं पसोपेश में था। फिर धीरे से दरवाजा खोलकर तेजी से पीछे हट गया। धड़धड़ाते हुए पाँच-सात युवक-युवतियाँ डिब्बे में घुस आए और हँसते हुए बर्थ पर बैठने लगे। वे सब बंगला बोल रहे थे। युवतियाँ मेरे बिस्तर पर बैठ गई थीं।

मैं चुप खड़ा हुआ तमाशा देख रहा था। गुस्सा आ रहा था। एक लड़की ने मुझसे कुछ कहा, मैंने अंग्रेजी में बताया कि मुझे बंगला नहीं आती।

उसने अंग्रेजी में कहा—सॉरी! ये आपकी बर्थ है, हम बिना पूछे बैठ गए। यदि आपको आराम करना हो तो बेडिंग ऊपर बिछा देते हैं। साथ वाले लड़कों की ओर देखते हुए उसने कहा। वे सब उठने लगीं। एक लड़का मेरा बेडिंग उठाने को उद्यत हुआ।

घड़ी देखते हुए मैंने कहा—नहीं-नहीं, रहने दीजिए। अब तो चार

बज चुके हैं, अब क्या सोएँगे। लड़कियों ने धन्यवाद देते हुए मेरे लिए बर्थ का एक कोना खाली कर दिया। दूसरे दो-तीन लड़के आए। वे ऊपर की बर्थ पर बैठ गए। ट्रेन चलने लगी तो पता चला कि बोलपुर स्टेशन था। स्टेशन पर अच्छी-खासी भीड़ थी जो ट्रेन में किसी तरह समा गई थी। फिर भी कुछ लोग बच गए थे। वे प्लेटफार्म पर खड़े थे दूसरी ट्रेन के इन्तजार में।

शांतिनिकेतन में कन्वोकेशन था। परम्परागत रूप से प्रधान मंत्री पं० नेहरू आए थे कुलपति की हैसियत से। समारोह देखने हर साल हजारों की संख्या में कलकत्ते से लोग आते हैं। सांस्कृतिक कार्यक्रमों को देखकर रात देर से इन्हीं लोगों की तरह लौटते हैं। उनकी बातें दिलचस्प थीं। मैंने भी हिस्सा लेना शुरू किया साहित्य, राजनीति, टैगोर, नेहरू, अनेक विषयों पर। वे सभी अच्छे पढ़े-लिखे बुद्धिमान थे। एक स्टेशन पर उन्होंने मुझे चाय भी पिलाई। कुछ देर बाद एक लड़की ने पर्स से निकाल कुछ लौंग और इलायची हथेली पर रखीं और मुझसे कहा, लीजिए। मैंने एक इलायची ली और मुँह में रखी। दाँत के नीचे जाते ही कड़ाक। इलायची तो पत्थर की बनी हुई थी। सब लोग हँस पड़े। मैं भी खिसियाया हँसा। लड़की ने अच्छी मजाक की थी। झेंप मिटाने के लिए मैंने इलायची की कारीगरी की प्रशंसा की और नमूने के तौर पर रखने के लिए माँग ली। इलायची, लौंग, बादाम सब असली लगते थे, पत्थर के बने थे।

वह लड़की बार-बार माफी माँगते हुए हर चीज के दो-तीन नमूने देने लगी।

खिड़की से अब बंगाल के हरे-भरे खेत और पानी से भरे पोखर दिखाई देने लगे थे। पूरब का आकाश लाल हो चला था। ट्रेन जैसे ताल-बद्ध चल रही थी। वातावरण जैसे संगीतमय हो रहा था। एक लड़के ने बंगला गीत गाना शुरू किया। धीरे-धीरे सब लड़कों ने गाना शुरू कर दिया। कुछ-कुछ समझ आता था…सोनार बांगला-सुन्दर प्रकृति, किसान और मजदूर सबकी बात थी। अच्छा गीत था। कलकत्ता करीब था। झोंपड़ियों, कारखानों का धुआँ उगलती चिमनियाँ दिखाई पड़ रही थीं।

स्टेशन पर लड़कों ने हाथ मिलाया। लड़कियों ने अभिवादन किया।

कितना असर है दोनों घटनाओं में । याद दोनों की रह जाती है । एक से नपुंसक क्रोध उत्पन्न हो जाता है—इसलिए कि उस उद्दंडता, बदतमीजी के हम निस्सहाय प्रेक्षक होते हैं । दूसरे लोग इसलिए कि उनमें युवा मस्ती तो है पर संस्कार है, सुरुचि है । बुद्धिमानीपूर्ण मजाक हो तो अच्छा भी लगता है ।

छत्तीसगढ़ में ही नहीं अब सारे देश में खासकर हिन्दी भाषा-भाषी प्रांतों में छात्रों, युवकों द्वारा जो कुछ किया जा रहा है वह दिशाहीनता का परिचायक है । समाज की बदलती हुई मान्यताओं का प्रतिबिम्ब है ।

आजादी के पूर्व देश में, समाज में नेता वह कहलाता था जो त्याग करता था । कुरबानी करता था । बुद्धिमान होता था । समाज को नई राह देता था । और आज नेता कैसे लोग हैं, चर्चा करना ही व्यर्थ है । डॉ० राही मासूम रजा ने एक जगह लिखा है—याद कोई हल्की-फुल्की चीज नहीं होती बादलों के गाले की तरह कि गुजर जाए और पता भी न चले । हर याद गुजरा हुआ एक जमाना है और कोई जमाना हल्का नहीं होता ।

जिनसे मैं छूट गया अब वह जहाँ कैसे हैं
शाखे गुल कैसी है
फूलों के मकां कैसे हैं
जिस गली ने मुझे सिखलाये थे आदाबे-जुनूं
उस गली में मेरे पैरों के निशां कैसे हैं ?
मैं तो पत्थर था···

18 मार्च '79

चमत्कार का इंतजार

बालकनी में खड़े होकर मैं यह जानने की कोशिश कर रहा हूँ कि कोयल किस झाड़ पर बैठी कुहुक रही है। अन्य पक्षियों की अनेक तरह की आवाजें आ रही हैं। पर इन सबके ऊपर तैरती हुई आवाज उसी की है—जो मैं सुनना चाहता हूँ तब तो नहीं पर बेमौके जरूर सुनायी देती है।

अहमदाबाद के उस इलाके में हूँ जहाँ लोगों की सुबह बड़े इत्मीनान से होती है। पोलीथीन की दूध की थैलियाँ फ्लैट्स के दरवाजों पर पड़ी रहती हैं। हॉकरों द्वारा फेंके गये अखबार बालकनी में हवा खाते रहते हैं।

सड़क के उस पार सामने के बँगले बरामदे में एक बूढ़ा सफेद धोती-बनियान पहने जमीन पर माला फेरता हुआ यह इश्तहार कर रहा है कि वह भगवान को याद कर रहा है। पर लगातार इधर-उधर घूमती निगाहें उसके दिल और दिमाग के फर्क को उजागर करती हैं।

रास्ते में स्वास्थ्य के मामले में कुछ जागरूक इक्का-दुक्का लोग मार्निंग वाक करते हुए मिल जाते हैं। स्कूल जाने वाली लड़कियाँ हलके बादामी रंग की यूनिफार्म पहने सायकिलों पर टिकी हुई बतिया रही हैं और दूसरी लड़कियों का इंतजार कर रही हैं। सब्जियों की दुकान सजायी जा रही है। पर होटलों में अँगीठी जलना तो दूर नौकरों की भी चहल-पहल नहीं दिखाई देती। उच्च मध्यमवर्गीय लोगों का यह मुहल्ला है। छोटे बँगले इस इंतजार में बदरंग और खस्ता हाल हो रहे हैं कि उनके मालिक पैसों का इंतजाम कर ओनर शिप फ्लैट्स वाले तीन-चार मंजिला

मकान बनाना चाहते हैं।

भूमि का अधिकतम उपयोग कर अधिक पैसे कमाना यह हर बड़े शहर की प्रवृत्ति रहती है। पर चार महानगरों बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली और मद्रास के बाद संभवत: अहमदाबाद ही ऐसा है जो बेतहाशा बढ़ रहा है। जमीनों के भाव भी बेतहाशा बढ़ रहे हैं। हर नई इमारत हर दूसरी इमारत से ऊँची बनती है। हर नई इमारत छोटे लोगों की छोटी इमारतों को तोड़कर तेजी से बनायी जा रही है।

इलाके में थोड़ी बहुत हरियाली छोटे-छोटे आँगनों में लगाये गये युकेलिप्टस और अशोक वृक्षों, फूल के पौधों की वजह से है। हाते की दीवारों से कहीं-कहीं बारहमासी फूल झाँकते हैं—खूबसूरत पर खुशबू विहीन।

अहमदाबाद से पाँच गुजराती और दो अंग्रेजी के दैनिक निकलते हैं। गुजराती दैनिकों में एक को छोड़कर बाकी सब में वे ही सुर्खियाँ हैं जयप्रकाश और भारतीय संसद के तीसरे सदन जसलोक सभा में जे० पी० को देखने आने वाले नेताओं की।

इन अखबारों में जे० पी० के स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारी इतनी विस्तृत दी जाती है कि एक परिचित महिला ने बोर होकर कहा, यदि एक-दो महीने ऐसी ही न्यूज पढ़ने को मिली तो हम सब विशेषज्ञ डाक्टर हो जायेंगे।

जे० बी० कृपलानी भी बीमार हैं और यहीं हैं इसलिए अखबारों में वे भी छाये रहते हैं। कुल मिलाकर अखबार पढ़ने पर मनहूसियत का माहौल बनता है। मुझे दोनों बीमार महानुभावों के लिए दिली सहानुभूति है। पर अखबारों में न्यूज का संतुलन न होना बड़ा अजीब लगता है।

गुजरात में सर्वाधिक प्रसार का दावा करने वाले 'संदेश' और 'गुजरात समाचार' दैनिकों में बड़ी तीखी प्रतिद्वंद्विता है। इन दोनों अखबारों में विज्ञापन का यह हाल होता है कि रविवार को तो मुखपृष्ठ पर बायीं ओर एकाध न्यूज को छोड़कर दाएँ हिस्से में ऊपर से ही विज्ञापन शुरू हो जाते हैं। ऐसा लगता है कि विज्ञापन कम होने के कारण जगह

भरने के लिए समाचार छापे जाते हैं।

हफ्ते भर वहीं रहा। विधान सभा की बैठक चल रही थी पर अखबारों में इस बारे में कुछ भी पढ़ने को नहीं मिलता था। जिस दिन दोनों अखबारों के शासकीय विज्ञापन की दरों के फर्क का विवाद सदन में उठा उस दिन तो दोनों अखबारों ने मुखपृष्ठ पर और अंतिम पृष्ठ पर अपनी व्यथा इस तरह व्यक्त की जैसे यही राष्ट्रीय समस्या हो। माना कि विज्ञापन अखबारों की 'कमजोरी' है—पर किस हद तक !

एक गुजराती दैनिक से सम्बन्धित मित्र ने ईमानदारी से उत्तर दिया, गुजरात के अखबार प्रमुख रूप से हमारे जैसे बनिये व्यवसायियों के हाथ में हैं। हम बुनियादी तौर पर व्यावसायिक रूप से अखबार चलाते हैं। लड़ना हमारे स्वभाव में है नहीं इसलिए एस्टाब्लिशमेंट के विरुद्ध लिखने की जुर्रत करते नहीं।

अखबारों में कहीं कोई मानवीय दृष्टिकोण, गरीबों की, मजदूरों की समस्याओं का उल्लेख नहीं होता। कोई अच्छी न्यूज मैगजीन नहीं—जो हैं वे समाचार अपराध, हत्या, अपहरण, की कथाएँ ही ज्यादा छापती हैं। भद्दे मुखपृष्ठ देखकर तो खरीदने की इच्छा नहीं होती।

मैंने आगे कहा जिस भाषा में नया अच्छा प्रगतिशील लेखन होता है वह दूसरी भाषाओं में अनूदित होता है। एक जमाने में गुजराती से अनुवाद हिन्दी और अंग्रेजी में भी होते थे, पर पिछले दशक से ऐसा नगण्य ही देखने को मिला। स्पष्ट है कि गुजराती पत्रकारिता और साहित्य के क्षेत्र में गिरावट आयी है। परिणामस्वरूप गुजराती फिल्में बहुत बन रही हैं पर वे भी एक फार्मूले गाँव के प्रणय प्रसंग, गरबा, मारपीट, तलवारबाजी से भरी रहती हैं। नाटक तकनीकी दृष्टि से उत्कृष्ट होते हैं पर आम आदमी उसमें कहीं नहीं होता। अपवादों की बात नहीं कर रहा, मूल प्रवाह से तात्पर्य है। यहाँ न तो कोई सैद्धांतिक बहस है न वैचारिक मुद्दा।

जाहिर है इतने सारे प्रश्नों पर एक साथ चर्चा करने की स्थिति में वे नहीं थे पर उन्होंने एक बात बहुत अच्छी कही—गुजरात में पूरी राजनीति व्यक्तियों के आसपास घूमती है। सैद्धांतिक विवाद इसलिए नहीं है कि

पिछली या वर्तमान जनता सरकार मूल रूप से कांग्रेस की सरकारें हैं। सवाल केवल एक-दूसरे से न बनने का है। जनसंघ में दोनों कांग्रेस से ज्यादा सैद्धान्तिक बहस करने के लिए कुछ है ही नहीं।

पहले केवल सूती मिलें थीं पर पिछले तीस वर्षों से अहमदाबाद का अन्य उद्योगों को लेकर बहुत तेजी से विकास हुआ है। कुछ अंतराल के बाद जब भी जाता हूँ, उठ चुकी बहुमंजिल इमारतें, सैकड़ों-हजारों की तादाद में अनवरत जहरीला धुआँ उगलती बसें, कारें, ऑटो रिक्शा, सड़कों पर धकियाती हुई बेतहाशा भीड़ में मेरा दम घुटने लगता है। कलकत्ते में तो ऐसा लगता है कि सड़कों पर इंसानी सैलाब उमड़ आया हो। पर अन्य महानगरों में और यहाँ एक फर्क महसूस होता है। इस शहर के पास धड़कता हुआ दिल नहीं है, सबकी भावनाएँ समृद्ध और सम्पन्न वर्ग के पास गिरवी रखी हुई हैं।

सोचने की पूरी क्रिया प्रकाशन के साधन जिनके हैं उनके द्वारा ही संचालित होती है। पूँजीवाद की गिरफ्त प्रकाशन के मामले में शायद अमरीका में भी इतनी सख्त नहीं।

बड़ी घुटन महसूस होती है। कोफ्त होती है।

यहाँ भी दीवारों पर पढ़ने को मिला—जय गुरु देव के सतयुग आगमन यज्ञ में काशी चलो। पर यहाँ राजस्थान या उत्तरप्रदेश की तरह एक एकड़ जमीन से सौ मन अनाज पैदा होने का आश्वासन नहीं है। यहाँ किसान अनाज बहुत कम पैदा करता है। समृद्ध है, कपास, तम्बाकू, जीरा, सौंफ, मूँगफली पैदा करता है। शेष भारत का किसान कलयुग में जी रहा है पर गुजरात का किसान इस लिहाज से सतयुग में ही है। यज्ञ के इन्हीं नारों के बाजू में कहीं-कहीं यह भी पढ़ने को मिला—यज्ञ पूँजीपतियों के ढकोसले हैं। देश के बच्चे बिना दूध के मर रहे हैं, तब मनों घी की आहुति जीव-हत्या नहीं तो क्या है?

उस दिन मेरे पास जितनी पत्रिकाएँ थीं, सबमें आवरण से ही राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का विरोध मुखर हो रहा था। साथ बैठे एक यात्री ने उनको उलट-पलट कर देखा और ऐसे लौटाया जैसे वे आग के शोले

हों ! उन्होंने पहला सवाल खीज भरे स्वर में दागा—क्यों साहब, ये सब लिखते हैं कि आर० एस० एस० अनुशासित संगठन है तो फिर उसका विरोध क्यों करते हैं ?

अनायास उसी लहजे में मैंने कहा—केवल अनुशासन अपने आप में कोई क्वालिफिकेशन (योग्यता) तो नहीं है। अनुशासन तो भेड़ों में भी होता है, दिमाग नहीं होता। इसलिए कोई बहस किए बगैर वे हाँकने वाले का आदेश मान लेती हैं और एक के पीछे सब चल पड़ती हैं। संघ में कोई चुनाव नहीं होता, न ही अपने मत प्रकट करने का कोई अवसर दिया जाता। धर्मनिरपेक्ष भारत में हिन्दू राष्ट्रवाद, पेशवाशाही की बात करना ! मुसलमानों और क्रिश्चियनों को भारतीय न मानने वाले फासिस्ट संगठन का देश में कोई स्थान नहीं हो सकता।

शायद मेरा स्वर कुछ ऊँचा हो गया था। उसने कुछ दबे हुए स्वर में कहा—पर मुसलमान ज्यादा साम्प्रदायिक होते हैं, ज्यादा संगठित होते हैं। वे हर बार पाकिस्तान की ओर देखते हैं।

मैंने सामान्य स्वर में कहा—कौन से समाज के लोग संगठित नहीं हैं। गुजराती, मारवाड़ी, सिख आदि सभी के तो संगठन हैं। मुसलमानों में भी शिया, सुन्नी, बोहरा, खोजा सबके अलग संगठन हैं। हम आप गुजराती हैं, जन्मे दूसरे प्रांत में। रहते भी वहीं हैं। फिर भी गुजरात में बाढ़ आने पर हम आसाम की बाढ़ के मुकाबले ज्यादा परेशान होते हैं। यह सब तो स्वाभाविक प्रवृत्ति है जो हमारे हिन्दुस्तानी होने में आड़े तो नहीं आती।

आगे कहा—अब आप शायद ये कहेंगे कि कौमी दंगों में हिन्दू ज्यादा मारे जाते हैं। उसका भी उत्तर सुन लीजिए, दंगे में हर पक्ष ज्यादा मार खाने की बात कर रोता है। सामने वाले को ज्यादा मारने की नहीं। दंगाइयों की और गुंडों की कोई जात नहीं होती। कौमी दंगे निहित स्वार्थ वाले लोग ही करवाते हैं। हर दंगे में गरीब ही मारे जाते हैं। हिन्दू-मुसलमान की छोड़िये। हरिजनों पर सवर्ण हमले करते हैं, उनको जिन्दा जला देने की न्यूज अखबारों में आए दिन छपती है। आजादी के बाद शासन चाहे किसी पार्टी का रहा हो, ये वारदातें बढ़ती ही रही हैं। शासन केवल चिन्ता व्यक्त करता है, समस्याएँ मुँह बाये खड़ी रहती हैं।

कुछ नहीं बना तो उन्होंने कहा—फिर भी साहब, उनमें ज्यादा एकता है। मुस्लिम राष्ट्रों को ही देखिए।

मैंने कहा—कोई ठोस उदाहरण दीजिए। सिवा तेल की कीमत बढ़ाने के मुस्लिम राष्ट्रों में कहाँ एकता है। टर्की और इजिप्त अमरीकापरस्त हैं, तो कुछ राष्ट्र समाजवाद की ओर भी झुके हुए हैं। कहीं मुल्लाओं का सत्ता में दखल है तो वे पन्द्रह सौ साल पुराना इस्लामी राष्ट्र बनाना चाहते हैं। वहीं सुधारवादी लोग विरोध भी कर रहे हैं। औरतें बुर्के छोड़कर मुखालिफत कर रही हैं। इस्लाम के सिवा भी हर देश, हर समाज में दकियानूसीपन का विरोध करने वाले सुधारवादी होते ही हैं। किसी जात का कोई चरित्र नहीं होता। वर्ग का होता है। वर्ग जो आर्थिक समानता के आधार पर बनते हैं।

कोई आधे घंटे की इस गरमागर्म बहस के बाद जब वे हर कोशिश के बाद भी ठोस बात नहीं कर सके तो उन्होंने निराश होकर कहा—छोड़िये साहब, आप हमारी बात मानते ही नहीं तो क्या फायदा।

उनके हिसाब से शायद यह कोई सौदे की बात थी जो कम-बेसी कर मुझे मान लेनी चाहिए थी।

उसके बाद मेरे साथ लगभग दस घंटे वे ट्रेन में थे पर उन्होंने कोई बात नहीं की। मैंने बात आई-गई करने के लिए एक-दो बार चाय पिलानी चाही तो भी उन्होंने नाहीं की।

मुझे यकीन है, यह पत्र जब प्रकाशित होगा तब तक पाकिस्तान के एकमात्र निर्वाचित प्रधानमंत्री भुट्टो को फाँसी दी जा चुकी होगी।

मुझे बड़ा अजीब लगता है कि एक राष्ट्र के रूप में हमने भुट्टो के लिए घोषित फाँसी की सजा को केवल मानवीय दृष्टिकोण पर ही गलत माना है। राजनीतिक या सैद्धांतिक आधार पर बहुत कम चर्चा हुई है और यही वजह है कि हम जैसे एक मरीज के बिस्तर के पास, जिसके बचने की किसी भी सम्भावना से डाक्टर ने इन्कार किया है, खड़े रहकर ऐसी चमत्कारी घटना का इन्तजार कर रहे हैं जिससे वह बच जायेगा। पर ऐसी कोई घटना होने वाली नहीं है।

8 अप्रैल '79

विनोबा सत्याग्रह कब करते हैं ?

गुटरगूं···गुटरगूं···

एक कबूतर खिड़की के रास्ते से उड़कर आया और चल रहे पंखे की ब्लेड से बाल-बाल बचते हुए क्रोध में आलमारी पर जा बैठा। उसकी फड़-फड़ाहट और आवाज से मैं जाग उठा।

यात्रा की सहज थकान थी। मेजबान ने दोपहर को आराम करने के लिए जो कमरा दिया था वह पूरब में है और खिड़की के ही करीब एक नीम व एक आम का पेड़ है, इसलिए काफी ठंडा है। इरादा था कि दोपहर लेटते हुए गुजार दूंगा पर कमबख्त कबूतर ने, जो शांति का प्रतीक है, मेरी शांति भंग कर दी। इसी दौरान एक गौरैया भी उड़कर आ गई और अलापने लगी।

फैन बन्द कर उन्हें उड़ाने की कोशिश की, जोर-जोर से ताली बजा कर और अजीबोगरीब आवाज निकालकर। पर वे दोनों हैं कि कमरे के एक छोर से उड़कर दूसरे छोर में चले जाते हैं – बाहर नहीं जाते।

कुछ ही देर के इस मिथ्या उपक्रम के बाद मैं पसीना-पसीना हो जाता हूँ। थककर बिस्तर पर बैठ जाता हूँ।

उनको शायद मुझ पर रहम आया और एक के बाद एक दोनों फुर्र से खुले हुए दरवाजे से बाहर निकल गए।

वे छाँव चाहते थे और मैं पंखे की हवा। इसीलिए सहअस्तित्व नहीं जम सका। यानी बाबा विनोबा भावे 22 अप्रैल से गौ-हत्या पर कानूनी

बंदिश लगाने की माँग को लेकर एक सौ ग्यारह दिन की भूख हड़ताल पर बैठने वाले हैं।

विनोबाजी से ऐसा न करने का आग्रह करने संसद सदस्यों का एक सर्वदलीय प्रतिनिधि मंडल पवनार जाकर मिला। पर बाबा ने उनकी बात मानने से इन्कार कर दिया।

गौ-हत्या का विरोध धार्मिक आधार पर किया जाता है। पर इसके लिए किया गया हर आन्दोलन राजनीतिक ही रहा है। चाहे वह जनसंघ ने किया हो या आज उसे विनोबाजी करें। इस देश में जिन लोगों में राजनीतिक उद्देश्य की स्पष्टता कभी नहीं रही और परिणामस्वरूप ऐसे लोगों ने अनेक उद्देश्यविहीन असफल आंदोलन किए वैसे नेताओं में विनोबाजी का प्रमुख स्थान है। वे अपने को संत कहलाना पसंद करते हैं। राजनीतिक दलों से दूर रहने की बात करते हैं। पर वे राजनीतिक कार्य ही करते हैं। इसलिए मैं तो उन्हें नेता ही मानता हूँ। संत का जामा वे इसलिए पहनते हैं कि आम हिन्दुस्तानी संतों की टीका नहीं करता। बल्कि अंधविश्वास के साथ आदर देता है और उनकी गलत बात को भी सही मान लेता है।

विनोबाजी ने दूसरा महात्मा गांधी बनने की हर कोशिश की। पर उनके पास गांधीजी की तरह उद्देश्यों की स्पष्टता नहीं रही और न ही वे सत्ता के विरोध में रहे। बाबा का असफल भू-दान आंदोलन, शासन और पूंजीवादी प्रेस की बैसाखियों के भरोसे ही चलता रहा और समाप्त भी हो गया।

बाबा बड़े चतुर हैं। राजनीतिक दुविधा के समय मौन धारण कर लेते हैं। और ऐसे प्रश्नों को लेकर प्रकाश के केन्द्र में रहते हैं कि विरोध कम हो, बात धर्म की हो और महत्ता बनी रहे।

के० के० एक्सप्रेस में उस दिन एक केरलवासी युवक, जो बड़ी तन्मयता से एक पत्रिका पढ़ रहा था पत्रिका को लगभग पटकते हुए बोला— जहन्नुम में जाएँ ! ये लोगों को क्यों परेशान करते हैं। पत्रिका के मुख-पृष्ठ पर विनोबाजी का चित्र था और शीर्षक था 'गोवध का ब्लैकमेल।'

मैंने मुस्कुराते हुए पूछा—किसे जहन्नुम भेज रहे हो ? क्या हो गया ?

उसने बाबा के चित्र की ओर इशारा करते हुए अंग्रेजी में कहा—उनको क्या अधिकार है कि वे दूसरों पर अपनी इच्छा जबरन लादें!

मैंने उसे कुरेदने के इरादे से कहा—अरे भाई, हम सब हिन्दू हैं। हमारा बहुमत है। गाय के साथ हमारी धार्मिक भावनाएँ जुड़ी हुई हैं।

उसने उत्तेजित स्वर में कहा—तो क्या हुआ? मैं भी हिन्दू हूँ, मांसाहारी नहीं हूँ पर मैं अपनी बात दूसरों पर जबरन लादना गलत मानता हूँ। मुसलमान सुअर का गोश्त नहीं खाते, हिन्दुओं में भी कुछ लोग धार्मिक कारणों से ही कंदमूल नहीं खाते, प्याज-लहसुन नहीं खाते, कल वे भी आंदोलन करें तो क्या उनकी बात मान ली जायेगी।

देश के सामने अनेक विकराल समस्याएँ हैं। गरीबी बढ़ती जा रही है। आधे से ज्यादा हिन्दुस्तानियों को एक जून का खाना बड़ी मुश्किल से मिलता है। हरिजन सवर्णों के हाथों रोज मारे जा रहे हैं। इनमें से किसी एक समस्या के लिए वे भूख हड़ताल क्यों नहीं करते? मजदूरों को पूरी रोजी नहीं मिलती, युवकों को नौकरी नहीं मिलती। इसके लिए विनोबाजी आंदोलन क्यों नहीं करते।

मैं मजे से सुनता जा रहा था—गोवध और पूर्ण नशाबन्दी लागू हो जाने से क्या देश की सभी समस्याएँ समाप्त हो जायेंगी। हजारों-लाखों जानवर जो दूध नहीं दे सकते या कमजोर हो जाते हैं उनके मालिक खुद ही उन्हें बोझ मानकर सड़कों पर धकेल देते हैं। वह पशुधन जो गरीब राष्ट्र की अर्थव्यवस्था पर ही बोझ बनता जा रहा है उसको बनाये रखकर वे कौन-सी समस्या हल करेंगे।

मैंने चिढ़ाने के लिए कहा—भई फिर भी धर्म का सवाल है!

उसका कहना था—हम धर्मनिरपेक्षता और सहिष्णुता की बात करते हैं, दूसरी ओर आम लोगों के खाने-पीने पर धर्म की दुहाई देकर कानूनी रोक लगाना कहाँ तक न्यायोचित है।

उसने तर्क समाप्त करने के स्वर में कहा था—विनोबा की इस बार की भूख हड़ताल का मूल रहस्य यह है कि बंगाल और केरल दोनों प्रदेशों में कम्युनिस्टों के मुख्य मंत्री हैं। वामपंथी सरकारें हैं।

वैसे फिल्में कम देखता हूँ। अच्छी फिल्में हों तो बम्बई जैसे शहर में एक दिन में तीन तक देखने का रिकार्ड है मेरा या फिर महीनों नहीं देखता। इस साल बहुत कम देखीं।

रेलवे में जब से थ्री टायर और सिटिंग के नये कोच बने हैं, दुनिया छः या आठ यात्रियों के बीच ही सिमट जाती है। अंग्रेजों के जमाने में पूरे डिब्बे में कोई पार्टीशन नहीं हुआ करता था, तो एक सिरे से दूसरे सिरे तक यात्रियों की संख्या भी गिनने में तकलीफ होती थी। तब दुनिया बड़ी हुआ करती थी पर अब इन सात-आठ यात्रियों को आप ठीक से आबजर्व कर सकते हैं—जो आपके ब्लाक में बैठे हैं।

ट्रेन में एक गुजराती युवा युगल सामने की बर्थ पर बैठा था। युवती कुछ परिष्कृत रुचि की लगती थी और भाई साहब, अनुभूतिविहीन पैसे को सर्वोपरि मानकर अन्य मामलों में क्रूड टेस्ट वाले छः फुट की ऊँचाई के बावजूद दो इंच हील वाले जूते और अजीबोगरीब प्रिंट वाले इंपोर्टेड कपड़े पहने हुए।

टाइम्स आफ इंडिया में मुखपृष्ठ पर ही 1978 के फिल्म फेयर एवार्ड की न्यूज थी। मैंने जैसे ही अखबार मोड़ा उस युवती ने माँगा। एवार्ड वाली न्यूज को पढ़कर युवक से उसने कहा—देखा, मैंने कहा था न 'मैं तुलसी तेरे आँगन की' को श्रेष्ठ फिल्म का पुरस्कार मिला है।

वह एक घटिया हिन्दी पाकेट बुक पढ़ रहा था। उपेक्षापूर्ण ढंग से बोला—ऊँह! तो क्या हो गया? मैंने युवती का उत्साह बढ़ाते हुए कहा—तो आपकी पसंद की फिल्म को इनाम मिला।...पर आपने 'मैं तुलसी तेरे आँगन की' को ही क्यों श्रेष्ठ माना? दूसरी भी तो थीं—तृष्णा, सत्यं-शिवं-सुन्दरम्, शतरंज के खिलाड़ी आदि।

—भाई साहब, फिल्म अच्छी थी। मन को भा जाए ऐसी।

मैंने कहा—भावनात्मक होना दूसरी बात है। अन्यथा मेरे हिसाब से तो नूतन और आशा पारेख के अभिनय के सिवा उस फिल्म में कुछ भी श्रेष्ठ नहीं था। बल्कि मैं तो केवल एक गाना और उसकी सिचुएशन—'वो खिड़की जो बन्द रहती है'—के आधार पर ही उसे रिजेक्ट कर देता। अच्छी फिल्म का अर्थ होता है कम से कम उसमें कोई खराबी तो न ही हो।

उसने कहा—फिर भी साहब लोगों ने तो उसे ही वोट दिया।

मैंने कहा—लोग देते नहीं वह तो मैनीपुलेट किए जाते हैं। बिनाका गीत माला में भी ऐसा ही होता है। घटिया फिल्मों के गीतों की रिकार्डों की बिक्री बढ़ाकर बताई जाती है, नहीं तो सही माने में तो मैंने पूरे वर्ष भर जहाँ गया 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' का 'राधा क्यों गोरी' हर जगह सुबह-शाम बजते सुना, पर बिनाका वालों ने सर्वाधिक लोकप्रिय गीत दूसरा ही घोषित किया।

उसने पूछा—यदि ऐसा ही है तो सत्यजीत रे को क्यों श्रेष्ठ निर्देशन का पुरस्कार फिल्म फेयर वालों ने दिया?

मैंने कहा—डर के मारे। सारी दुनिया जिसे वर्षों से श्रेष्ठ डायरेक्टर मानती आई है उसे किसी भी तरह एवार्ड देकर अपनी बुद्धिमत्ता बताने के लिए। वैसे उनके न देने से सत्यजीत रे का कुछ भी बिगड़ने वाला नहीं था। न उनके एवार्ड से उनकी प्रतिष्ठा ज्यादा बढ़ी है।

कोई चमत्कारिक घटना नहीं हुई। पाकिस्तान के एक मात्र निर्वाचित प्रधानमंत्री जुल्फीकार अली भुट्टो साहब बचाये न जा सके। जनरल जिया-उल-हक ने भुट्टो की नहीं डेमोक्रेसी (प्रजातंत्र) की हत्या की है। पाकिस्तान के प्रथम निर्वाचित प्रधानमंत्री भुट्टो पूर्णरूपेण अच्छे व्यक्ति थे ऐसी कोई बात नहीं। पर निश्चय ही सैनिक तानाशाहों से अच्छे थे।

आश्चर्य और क्षोभ हुआ यह जानकर कि लोकसभा में भुट्टो को फाँसी दिए जाने पर कोई चर्चा इस आधार पर नहीं करने दी गयी कि दूसरे देश की सर्वोच्च अदालत द्वारा गुनाहगार करार दिये गये व्यक्ति के मामले पर सदन में कोई चर्चा नहीं हो सकती। जाहिर है कि हम फौजी तानाशाहों की अदालतों और प्रजातांत्रिक देशों की अदालतों के फर्क को नहीं समझते।

हम बंगबंधु शेख मुजीबुर रहमान को जेल में बंद रखने का विरोध कर सकते हैं, रिहाई की माँग कर सकते हैं—पर भुट्टो की नहीं। मैं भुट्टो को बंगबंधु के समकक्ष नहीं रख रहा पर प्रश्न तर्क का है जो यहाँ लागू होता है।

मानता हूँ कि भुट्टो को सजा दिये जाने का विरोध कर निर्णय पर हम कोई असर नहीं डाल सकते थे पर यह भी सच है कि जनता पार्टी के सत्तारूढ़ नेताओं में राजनीतिक संदर्भ की समझ और साहस का अभाव है। अधिकांश नेता तो हर मामले में इंदिरा गांधी को ही ध्यान में रखकर सोचते व बोलते हैं। और वहाँ भी उनके दिमाग में वही बात थी।

जनता पार्टी के नेता यह भी भूल जाते हैं कि भुट्टो के साथ ही भारत-पाक के बीच शांतिपूर्वक हर मामले का हल ढूंढ़ने का ऐतिहासिक आधार शिमला समझौता भी दफन हो गया है।

भुट्टो एक प्रखर वक्ता और लेखक थे। उनकी कुछ बातें—

"पाकिस्तान के अस्तित्व से संबंधित बुनियादी और गम्भीर प्रश्नों का निर्णय देश में अविलंब मुक्त और निष्पक्ष चुनाव में निर्वाचित प्रतिनिधियों की सम्मति से ही या किये जा सकता है।...अन्यथा पाकिस्तान आज जिस गंभीर खतरे का सामना कर रहा है वह पाकिस्तान के 1971 के संकट से भी भयानक है।"

"भारत को उसके प्रजातांत्रिक शोर और गड़बड़ी ने ही अखंड बनाए रखा है।"

सैनिक तानाशाहियों के वे पुल हैं जिनके ऊपर से बड़ी शक्तियों की क्षेत्रीय नेतृत्व की दादागिरी तीसरे विश्व के देशों में आसानी से चली आती है।

दुनिया का क्या होगा ?

हम लोग राजनीतिक चर्चा कर रहे थे। बातचीत में दो-तीन बार मोरारजी भाई का नाम आया। मेरे मित्र का आठ-दस साल का बच्चा जो अहमदाबाद के एक कान्वेंट में पढ़ता है कालीन पर खेल रहा था। अचानक खड़ा हो गया और मेरे मित्र के पास जाकर कहने लगा—पप्पा, हमारे स्कूल की लेवेटरी के दरवाजे पर किसी ने चाक से लिख दिया है : मोरारजी ड्रिंक सेंटर। सब लोग पढ़ते हैं और हँसते हैं। पप्पा, बड़े लड़के उसे पढ़कर क्यों हँसते हैं ?

हम लोग भी बरबस हँस पड़े। बच्चे को हमारा हँसना पसंद नहीं आया। मेरे मित्र वैसे काफी सुलझे हुए प्रगतिशील किस्म के हैं। अपने बच्चों से मुक्त रूप से बात करते हैं। बच्चे ने ठुमककर कहा—पप्पा, आप भी हँसते हैं, बताइये ना।

मित्र को एक ओर हँसी आ रही थी, दूसरे यह समझ नहीं आ रहा था कि वे बच्चे को क्या जवाब दें। उन्होंने थोड़ा तुनककर कहा—हम अभी अंकल से बात कर रहे हैं, बाद में समझायेंगे। जाओ अभी खेलो।

किसी प्रसिद्ध आदमी का नाम किसी वस्तु या क्रिया विशेष से जुड़ जाता है तो वह भी बहुत जल्दी प्रसिद्ध हो जाता है। अनेक वैज्ञानिक उपलब्धियाँ शोधकर्ता वैज्ञानिकों के नाम से जुड़ी हुई हैं तो मोरारजी भाई का नाम मूत्र-प्रयोग से जुड़ गया है। वैसे वे स्व-मूत्र प्रयोग करते हैं और उन्होंने तत्संबंधी एक पुस्तक का केवल परिचय ही लिखा है परन्तु लेखक

बेचारा···उसे कौन याद रखे जब प्रधानमंत्री ही उससे संबंधित हो।

कुछ दिन पहले मैं दिल्ली जा रहा था। स्टेशन पर उतर कर ताज़ा पानी और चाय पीने की इच्छा थी इसलिए प्लास्टिक का गिलास हाथ में लिये हुए डिब्बे के दरवाजे पर आ खड़ा हुआ। गाड़ी आउटर सिगनल पर रुकी तो मैं लेवेटरी में गया। दो मिनट बाद बाहर आया।

एक प्रौढ़ सज्जन, जो पैसेज में खड़े थे, ने इशारा करते हुए पूछा—आप भी ! मैं कुछ समझ नहीं पाया, पूछा—क्या ? उन्होंने खुलासा किया—आप भी मूत्र पान करते हैं क्या ?

अब मुझे समझ आया कि प्रातःकाल, बाथरूम और ग्लास तीनों का क्या सम्बन्ध है। मैंने कहा—छिः !

उसने कहा—वाह ! उसमें क्या खराबी है ! मोरारजी भाई भी···।

मैं ऐसे फेनेटिक्स लोगों से डरता हूँ। ये अपने उद्देश्य का प्रचार करने में घूम-घूमकर बेचने वाले कन्नौज के इत्रफरोश या अलीगढ़ के ताले बेचने वालों से भी तेज होते हैं। आपने मौका दिया नहीं और उन्होंने धर दबोचा और आपकी क्षमता के मुताबिक घंटे-आध घंटे बोर किया नहीं।

मैं जिस चाय वाले के पास जा रुका वह वहाँ भी आया चाय पीने, तो मैं तुरन्त उसे वहीं छोड़ थोड़ी दूर दूसरे चाय वाले के पास चला गया। मैं उसे कतई कोई दूसरा मौका नहीं देना चाहता था।

जमशेदपुर के दंगों की आग से गुजरात के अखबार भी झुलस रहे थे। शासन को दस दिन पूर्व ही दंगे की संभावना की जानकारी थी मतलब यह कि शासन ने दंगे होने दिये। साम्प्रदायिक दंगे तो धार्मिक कार्यवाही हैं, कैसे रोकें ? शांति भंग होने की सम्भावना पर गिरफ्तारियाँ तो केवल श्रमिकों की ही होती हैं। जिन्होंने किसी आन्दोलन का नोटिस ईमानदारी और बहादुरी से दे रखा होता है। धार्मिक कार्यों का कोई नोटिस नहीं दिया जाता। दंगाइयों को हक है कि वे हथगोले, छुरी, चाकू, लाठियाँ, मकानात जलाने के लिए मिट्टी का तेल आदि सब कुछ इकट्ठा कर लें और भगवान का नाम लेकर कार्यवाही शुरू कर दें।

अहमदाबाद-हावड़ा एक्सप्रेस में जो सज्जन मेरे साथ बैठे थे वे बड़े चिन्तामग्न और चुप थे। पता चला वे जमशेदपुर जा रहे हैं। मैंने कहा

अभी तो वहाँ स्थिति सामान्य नहीं हुई है। फिर आप क्यों जा रहे हैं ?

उन्होंने बताया कि वे बिस्टुपुर (दंगे से प्रभावित जमशेदपुर का एक क्षेत्र) में ही रहते हैं। दो रोज से फोन से सम्पर्क करने के मिथ्या प्रयास के बाद उन्होंने यह तय किया कि वे वहीं जाकर अपने परिवार का पता लगायें।

जनता के प्रधानमंत्री मोरारजी भाई का हर मामले में एक अजीब दृष्टिकोण होता है। कालाबाजारी होती है—जनता क्यों खरीदती है ? भ्रष्टाचार बढ़ रहा है—जनता भ्रष्टाचारियों को क्यों बढ़ावा देती है यानी हर समस्या के लिए सवाल पूछने वाला या जनता ही जिम्मेदार है। उनका लेटेस्ट फतवा—गुंडागर्दी बढ़ती है इसलिए दिल्ली के सभी सिनेमा एवं होटल रात ग्यारह बजे बन्द।

पिछले डेढ़ वर्ष से दिल्ली का नागरिक विशेषकर महिलाएँ बहुत ही असुरक्षित महसूस कर रहे हैं। सड़कों पर, बसों में, गाड़ी या स्कूटर चलाती महिलाओं को सफेदपोश गुंडों द्वारा परेशान करने की सैकड़ों वारदातें प्रतिदिन हो रही हैं। प्रमुख अखबारों में परिचर्चाएँ आयोजित की जा चुकी हैं। मुखपृष्ठ पर सम्पादकीय छापे गये हैं, कुछ दिन पहले सरेआम दिन में एक कालेज की छात्रा को बस में परेशान किये जाने पर वह चालू गाड़ी से कूद पड़ी तब दूसरे दिन कालेज की छात्राओं एवं महिलाओं ने सुरक्षा की माँग करते हुए जबर्दस्त प्रदर्शन किया।

भयमुक्त बनो। प्रधानमंत्री बनने के बाद से उनका मुख्य नारा यही रहा है। भयमुक्त रहने के लिए कैसा वातावरण चाहिए उसकी उन्हें चिंता नहीं है। उन्होंने कहा और बस आप निर्भय हो जायें।

कितना बढ़िया हल ढूँढ़ निकाला है उन्होंने ! हम सुरक्षा की व्यवस्था नहीं कर सकते इसीलिए सिनेमा, होटल ग्यारह बजे बन्द।

मेरे हिसाब से तो मोरारजी भाई ने इस बार बड़ी दया की है। नहीं तो स्वभाव के मुताबिक तो उन्हें यही कहना चाहिए था, आप लोग सिनेमा जाते क्यों हैं। जाते हैं इसीलिए तो यह सब होता है। मत जाइए तो फिर ऐसा होगा ही नहीं ! दिल्ली की एक प्रसिद्ध महिला पत्रकार ने अपने

कालम में इस मामले पर व्यंग्य में लिखा है कि मोरारजी भाई ने तो रात के सम्बन्ध में यह आदेश दे दिया। पर दिन को महिलाओं के साथ अभद्र व्यवहार के अपराध हो रहे हैं उसका क्या होगा ?

मोरारजी भाई के पास उत्तर तैयार है। वे अब महिलाओं से कहेंगे, आप काम करने जाती क्यों हैं ? गाड़ी, स्कूटर चलाती क्यों हैं ? पढ़ने क्यों जाती हैं ? जाती हैं इसलिए ये सब होता है। मत जाइये फिर हम देखेंगे गुंडे क्या करते हैं।

गर्मी का मौसम भी अजीब होता है। खिड़की खुली रखिये तो ही हवा आती है वह भी गर्म। बाहर का दृश्य बड़ा सूखा और वीरान होता है। डिब्बे के भीतर पसीना पोंछते हुए बुझे-बुझे से चेहरे।

सामने की बर्थ पर बैठे हुए सज्जन ने बहुत ध्यान से पढ़ रहे गुजराती अखबार को मोड़ा। एक लम्बी साँस उँडेली और मेरी ओर देखते हुए निराशा के स्वर में बोल उठे—हे राम! अब क्या होगा ? अब क्या होगा— ये 'अब क्या होगा' हँसिया छाप साबुन की विज्ञापन फिल्म में खूबसूरत एयर होस्टेस द्वारा कहे गये 'अब क्या होगा' से ठीक विपरीत था।...न वो खूबसूरत थे—न उनके कपड़ों पर कुछ गिरा था।

मैं समझा कि वे यात्रा से काफी बोर हो चुके होंगे। पर उन्होंने अगले कुछ क्षणों में जैसे एक बम फोड़ा—पढ़ा आपने, 1982 में सारी दुनिया नष्ट हो जाएगी—हम-आप सब। पढ़िए इसमें ज्योतिष की भविष्यवाणी बहुत डिटेल में छपी है।

मैंने कहा, ऐसी भविष्यवाणी तो मैं हरएक दो साल की आड़ में पढ़ता हूँ। फलाँ वर्ष में फलाँ ग्रह-योग के कारण विश्व में भयानक उथल-पुथल होगी। प्रलय होगा। वह वर्ष बीत जाता है, दुनिया अपनी धुरी पर घूमती रहती है। लोग अपने कामों में लगे रहते हैं और ऐसी ही नई भविष्यवाणी पढ़ना शुरू कर देते हैं।

वर्षों पूर्व अष्टग्रह का योग चला था। उसके पहले इटली में दुनिया के नष्ट होने के डर से सैकड़ों लोग ऊँचे पहाड़ पर गुफा में महीनों बैठे रहे। वैसे ही कोई पच्चीस वर्ष पूर्व मेहर बाबा ने भी ऐसी ही घोषणा की

थी। पर दुनिया है कि हर बार बच जाती है।

उन्होंने पेपर मुझे देते हुए कहा—नहीं-नहीं, आप पढ़िए तो सही। इस बार तो ऐसा होगा ही, बड़े ठोस कारण बताए हैं इसमें।

उनका दुराग्रह टाल न सका। बेदिली से मैं जब तक पढ़ता रहा वे मेरी ओर आँखें गड़ाये देखते रहे जैसे मेरा डेथ वारंट लेकर आये हों और पूछ रहे हों—क्यों बेटा, पढ़ा ? अब बोल। समाप्त कर मैंने कहा—इसके मुताबिक हम-आप सब मर जायेंगे तो फिर चिन्ता किस बात की है, सारी दुनिया को जश्न मनाना चाहिए। दुनिया में दुखी लोग ही ज्यादा हैं। सारों को मुक्ति मिल जाएगी।

पर उनकी चिन्ता दूसरी ही थी। उन्होंने जितना पैसा, सम्पत्ति आदि का मायाजाल फैला रखा है उसका क्या होगा ? कुछ देर बाद उन्होंने कहा—नहीं-नहीं, फिर भी इसका कोई इलाज तो होगा ही। अपने पंडितों से पूछना पड़ेगा। मैं समझ गया ऐसे हजारों लोग पंडितों से पूछेंगे और सारे देश में अंधश्रद्धालुओं का जमकर दोहन होगा। अब हवन-यज्ञों का मौसम आ रहा है।

औसत हर हफ्ते में एक बार नागपुर जाना पड़ता है। जब भी जाता हूँ मुझे इस शहर पर तरस आता है। कभी पुराने सी० पी० एंड बरार प्रान्त की यह राजधानी प्रदेशों के पुनर्गठन के बाद से एक परित्यक्ता की तरह जी रही है। रौनक गायब। प्रगति अवरुद्ध। ठहरा हुआ शहर। वर्ष में एक बार विधानसभा होने पर थोड़ी चहल-पहल होती है अन्यथा बस वही ढर्रा।

बीस वर्षों में कोई नया प्रमुख उद्योग नहीं। कोई शासकीय निर्माण नहीं। स्टैडियम दस वर्षों से अधूरा। एक नया थियेटर नहीं। वातानुकूलित तो छोड़िए एयरकूल्ड थियेटर नहीं। सड़कें इस कदर जीर्ण हुईं कि विश्व में यदि सड़कें खराब बनाए रखने का कोई पुरस्कार हो तो वह आसानी से नागपुर को ही मिल सकता है।

उस दिन एक स्थानीय अखबार में पढ़ा, नागपुर की जनसंख्या बीस वर्षों में पचास प्रतिशत बढ़ी पर बढ़ती जनसंख्या कोई प्रगति की द्योतक

तो नहीं।

महाराष्ट्र सरकार द्वारा इस बजट में शहर के विकास के लिए एक करोड़ का प्रावधान। कितना क्रूर मजाक है लगभग पन्द्रह लाख की जन-संख्या के साथ। मेरे एक मित्र ने कहा—नागपुर तो अब केवल ट्रांजिट हाल्ट (यात्रा का एक पड़ाव) मात्र रह गया है।

प्रसिद्ध चित्रकार विनसेट वान गॉग ने लिखा है—मैं गिरजाघरों की अपेक्षा मनुष्य की आँखें अंकित करना ज्यादा पसंद करता हूँ।

गिरजाघर एवं धार्मिक केन्द्र चाहें कितने ही विशाल, भव्य, सुन्दर क्यों न हों मनुष्य की आँखों में ऐसी एक बात है जो उनमें नहीं।

22 अप्रैल '79

वो कैसा धर्म था ? ये कैसा धर्म है ?

सूरज अभी पूर्वी क्षितिज पर गहरे लाल रंग से डूबकर जैसे बाहर आ रहा था। गर्मी के दिनों की हर सुबह की तरह आसमान साफ था। लाल रंग बहुत तेजी से नारंगी और नारंगी से पीला होने लगा था।

नागपुर स्टेशन की पहली मंजिल, जहाँ वेटिंग रूम, रिटायरिंग रूम और रेस्तराँ हैं, का चौड़ा बरामदा सूरज की रोशनी से भर गया था। चौकोन खंभों की लम्बी कतार की छाया पूरे बरामदे में एक खूबसूरत पैटर्न बना रही थी। नीचे से अखबार खरीदकर आ रहा था तब सेकण्ड क्लास वेटिंग रूम के पास एक दृश्य देखकर कुछ क्षणों के लिए रुक गया।

वेटिंग रूम के बाहर एक मुस्लिम सज्जन जमीन पर टावेल बिछाकर चौखाने वाली लुंगी पहने हुए पश्चिम की ओर मुखातिब होकर नमाज पढ़ रहे थे। कमरे के भीतर खिड़की के दूसरी ओर एक दक्षिण भारतीय ब्राह्मण धोती पहने ललाट और गले पर भभूत लगाये आसन पर बैठे सूरज की ओर देखकर हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रहे थे। दोनों सूर्य के दिव्य प्रकाश से आलोकित थे।

दोनों एक-दूसरे के ठीक सामने थे। दोनों के बीच में एक दीवार थी जो इन्सान की बनाई हुई है। आसपास जो कुछ हो रहा था उससे बेखबर दोनों श्रद्धा भाव से अपनी पूजा में व्यस्त थे। मन को शान्ति देने वाला मेरी आँखों के सामने यह दृश्य था। दिमाग में अखबार के मुखपृष्ठ पर छपी जमशेदपुर के दंगों की व्यथित करने वाली वे तस्वीरें थीं जो गहरे

पैठकर बनती-बिगड़ती जा रही थीं। हजारों हिन्दू-मुसलमानों के घर-दुकानें जलकर नष्ट हो चुकी थीं। सौ से ऊपर लोग मारे गये थे, सैकड़ों घायल अस्पताल में तड़प रहे थे।

दोनों जगह धर्म ही था—यहाँ दिल को सुकून पहुँचाने वाला, वहाँ घृणा और मन को खिन्न करने वाला। वह कैसा धर्म था? यह कैसा धर्म है?

रिटायरिंग रूम में वापस आकर मैंने दूसरे यात्री से जिसे मेरे कमरे में ही कल शाम दूसरा बिस्तर दिया गया था, मैंने बाजू के सेकण्ड क्लास वेटिंग रूम का वह दृश्य देखने को कहा। कुछ क्षणों के लिए वह भी इस दृश्य को देख आया। परेशानी के स्वर में उसने कहा—तो फिर लोग धर्म के नाम पर वहशियाना हिंसक कार्रवाई क्यों करते हैं।

मैंने कहा—धर्म किसी को वहशी नहीं बनाता। जब उसमें राजनीति जुड़ जाती है, आर्थिक स्वार्थ जुड़ जाते हैं तो धर्म भगवान को छोड़कर साम्प्रदायिक संकीर्णता ग्रहण कर लेता है, जंगलीपन हावी हो जाता है और इन्सान इन्सान के खून का प्यासा हो जाता है।

बातचीत से पता चला कि वह क्रिश्चियन है। मेडिकल रिप्रेजेन्टेटिव है। वह बहुत ही सुलझे हुए दिमाग का था उसने बताया कि पिताजी किसी मिशन अस्पताल में डाक्टर हैं।

मैंने मजाक करते हुए कहा—अब तो धर्म-परिवर्तन पर रोक लगाने के लिए कानून बनने जा रहा है। फिर मिशन के लिए कुछ काम तो बचेगा नहीं।

उसने विस्तार से समझाया कि यह एक सुनियोजित प्रचार है कि क्रिश्चियन मिशन गरीब लोगों को बहका-फुसलाकर जबरन धर्म-परिवर्तन करते हैं। कोई इसकी तह में जाकर यह देखना नहीं चाहता कि लोग धर्म-परिवर्तन क्यों करते हैं।

अपने परिवार का ही उदाहरण देते हुए उसने बताया—मेरे दादा हरिजन थे। गाँव में अछूतों की अलग बस्ती में रहते थे। पीढ़ियों से हमारा परिवार सवर्णों का तिरस्कार अत्याचार बर्दाश्त करता रहा। पढ़ने-लिखने का तो प्रश्न ही नहीं था—पढ़ाता कौन? एक बार हमारी पूरी बस्ती

सवर्णों ने जला दी। सब लोग भागकर शहर आ गये। कोई सुनने वाला, सहायता करने वाला था ही नहीं। मिशन वाले ही ऐसे थे जिन्होंने पनाह दी, सहानुभूतिपूर्वक बर्ताव किया। मेरे दादा के साथ अनेक परिवारों ने धर्म-परिवर्तन किया। मेरे पिताजी मिशन स्कूल और कालेज में पढ़ डाक्टर बने, और खूब नाम कमाया है उन्होंने। जो लोग हमारी छाया को भी अस्पृश्य मानते थे वे आज कतार लगाये उनके यहाँ दवा लेने खड़े रहते हैं! धर्म-परिवर्तन कर पढ़े-लिखे तो इज्जतदार हो गए—कितनी अजीब बात है कि लोग हिन्दू धर्म छोड़कर ही दूसरे धर्म में जाते हैं। दूसरे धर्म के लोग हिन्दू क्यों नहीं बनते।

मैंने कहा—आपके मिशनों पर कुछ लोगों का यह आरोप है कि वे सी० आई० ए० के एजेन्ट हैं—जासूसी करते हैं। उत्तेजित स्वर में उसने कहा—विदेशियों की जासूसी करते जितने लोग पकड़े गये उनमें क्रिश्चियन कितने थे? कुछ दिन पहले सेना के आठ-नौ अधिकारी जासूसी के आरोप में पकड़े गये उनमें तो एक भी ख्रिस्ती नहीं है। जो पैसे पर बिकते हैं वे सदा बिकते रहे। चाहे किसी धर्म या जाति के हों। सही बात तो यह है कि देश के प्रति निष्ठा के मामले में भारतीय ख्रिस्ती कभी पीछे नहीं रहे।

मैंने स्पष्ट किया कि वह मुझे गलत न समझे। मेरे क्षेत्र छत्तीसगढ़ में साठ-सत्तर वर्ष पहले जब कोई चिकित्सा सेवा उपलब्ध नहीं थी तब भी सुदूर सघन जंगलों में मिशन अस्पताल ही एकमात्र सहारा थे। यहाँ तक कि पूर्णरूपेण पंगु हो चुके कोढ़ियों, जिनसे हम दस कदम दूर भागते हैं, के लिए अस्पताल भी मिशन वाले ही चलाते हैं। पर चूँकि क्रिश्चियन मिशनों के पास विदेशों से धन आता है इसलिए लोगों को शक होता है।

उसने उलटकर पूछा—किस धार्मिक मिशन के पास विदेश से पैसा नहीं आता? अब तो महेश योगी, रजनीश से लेकर योग के छोटे-मोटे मिशन वाले भी डालरों में बात करते हैं। असल बात यह है कि वर्तमान जनता पार्टी शासन बुनियादी रूप से साम्प्रदायिक संकीर्णतावादियों की गिरफ्त में है। चूँकि जनता पार्टी ऐसे मसलों पर विभाजित है। अशासकीय बिल लाया जा रहा है।

अहमदाबाद से जब वापस लौट रहा था, आणंद के दो प्रौढ़ सज्जन, व्यापारी किस्म के धोती, कुर्ता और टोपी पहने हुए आये और सामने की बर्थ पर बिस्तर बिछाकर आराम से पालथी मारकर बैठ गये। मेरे पास अंग्रेजी का अखबार था, वह माँगा और सीधे स्पोर्ट्स वाला पेज खोलकर पढ़ने लगे। एक दूसरे से जो बीड़ी फूँक रहा था, कहा—लो ये बनाई है टीम इन्होंने और कहते हैं हम जीतेंगे। वेंकट राघवन कप्तान हूँ···हूँ···

वे नाम पढ़कर सुनाने लगे—सुनील गावस्कर, कपिल देव, करसन घावरी···सुननेवाला हूँ-हूँ, कर जैसे एप्रूव कर रहा था।

पढ़ने वाला बोल रहा था—बिसनसिंह बेदी। दूसरे ने नाराजगी व्यक्त करते हुए कहा—ऊँह !

जब सब नाम पढ़ लिए गये तो बीड़ी वाले ने कहा—इसमें किरमानी तो है ही नहीं—क्या खाक जीतेंगे।

फिर हर नाम पर अलग-अलग बहस। कहीं दोनों सम्मत थे, कहीं विरोध था। इसमें गुजराती तो केवल करसन घावरी ही है।···अरे वह **घाँची (तेली) !**

एक बात साफ समझ आ गयी, ये केवल क्रिकेट नाम के खेल को नहीं खिलाड़ियों के नामों को ही जानते हैं। वह भी इसलिए कि उसका प्रचार साल भर, अखबारों और रेडियो पर होता है। जितनी बार लता मंगेशकर का नाम आता है उतनी ही बार सुनील गावस्कर का। प्रचार ही एक-मात्र कारण है कि लोग खेल को तो नहीं पर खिलाड़ियों को अवश्य जानते हैं।

मैंने उनके खेलकूद-प्रेम को टटोलने के इरादे से पूछा—प्रकाश पादुकोने को जानते हैं।

अखबार वाले ने पूछा—ये क्या क्रिकेट खेलता है। किस देश का है ?

मैंने कहा—वह भारतीय है। बैडमिंटन खेलता है। विश्व में दूसरा-तीसरा स्थान है उसका।

बीड़ी फूंक रहे सज्जन ने निर्विकार भाव से कहा—होगा।

मैंने कहा—इस बार विश्व-कप की भारतीय हाकी टीम कैसी लगी ?

अखबार वाले ने कहा—उसमें क्या है, हाकी में तो अपन हारेंगे ही।

मैंने कहा—इस बार अशोक कुमार भी खेलेगा।

बीड़ी वाले ने कहा—अशोक कुमार कौन ? फिल्म वाला ?

मैं हँसी न रोक सका। कहा—अशोक कुमार हाकी का खिलाड़ी है। हाकी के जादूगर ध्यानचन्द का लड़का।

लोगों के बीच आधुनिकों में खपने का शौक होता है—नव रईसों को। बम्बई में टैस्ट मैच देखने ऐसे सैकड़ों परिवार आते हैं, जिनके पास दो-तीन टिफिन में खाना और थर्मस में चाय होती है। उनके लिए पाँच दिन का टेस्ट मैच पिकनिक है। टिकिट बशौक ब्लैक में खरीदते हैं। दिन भर मैदान में गुजारते हैं। परिचितों को बताते हैं कि टैस्ट मैच चल रहा है। इसलिए वे बहुत बिज़ी हैं !

अखबार में एक अजीब न्यूज पढ़ी। किसी तांत्रिक ने अपनी विद्या से श्री कैलाश जोशी को, जब वे मुख्य मंत्री थे, मूर्छित एवं असन्तुलित बना दिया था। उनके स्थान पर चुने गये वर्तमान मुख्यमंत्री श्री सखलेचा ने उसे इस पुण्य कार्य के लिए सात हजार रुपये दक्षिणा दी थी। यह बयान अदालत में दिया गया है। साथ ही यह भी कि वह तांत्रिक अभी श्री राजनारायण से दक्षिणा लेकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के विरुद्ध तांत्रिक प्रयोग कर रहा है।

तो क्या और एस० एस० वाले मूर्छित हो जायेंगे ! सरसंघ चालक बाला साहब देवरस अवश्य चिन्तित होंगे। किसी बड़े तान्त्रिक की तलाश में व्यस्त होंगे। यदि न मिले तो एक रास्ता और है। ज्यादा पैसे देकर उसी तान्त्रिक की सेवाएँ क्यों न ली जायें। राजनारायण सहित सारा देश मूर्छित हो जाएगा। फिर न कवायद की जरूरत होगी न साम्प्रदायिक दंगों की।

भोपाल के एक प्रसिद्ध होटल में अंग्रेजी में एक कविता काउण्टर पर ही पढ़ने को मिली। मोरारजी भी पढ़ लें तो अच्छा हो—मुक्ति के मार्ग की जानकारी मिलेगी।

पीने से कभी इन्कार मत करो।
भगवान नाराज होता है।
जो पीते हैं वे सो जाते हैं,
जो सो जाते हैं···वे पाप नहीं करते,
जो पाप नहीं करते—उन्हें भगवान प्यार करता है,
और, अपने चरणों में स्वर्ग में जगह देता है।

29 अप्रैल '79

धुँधले दृश्य

घंटाघर की घड़ी साढ़े ग्यारह बजा रही थी। पिछले वर्ष लगभग इसी अवधि में चाईनीज रेस्तराँ से बाहर आने पर देखा था कि मेरी घड़ी ग्यारह बजा रही थी और टावर की घड़ी साढ़े चार। मैंने रिक्शे वाले से पूछा था—क्यों, ये घड़ी क्या ऐसे ही चलती है? बड़े दार्शनिक अन्दाज से उसने कहा था---किसको फुर्सत है साहब इसे सुधरवाने की। ये घड़ी तो तब ठीक होगी जब देश की घड़ी ठीक होगी।

देश की घड़ी कौन मेकेनिक ठीक करेगा पता नहीं, पर यह तो अब ठीक चल रही है।

जबलपुर में घंटाघर के साये में खड़ा चाईनीज रेस्तराँ अनेक कारणों से पसन्द है। इसका चीनी मालिक वांग और उसके परिवार के लोग इसे चलाते हैं। बड़े विनम्र हैं। जो चाईनीज डिश बड़े शहर के होटलों में दस रुपयों में मिलती है वह यहाँ उससे बेहतर और आधे दाम में मिलती है। ग्राहक मध्य वर्ग के लोग हैं। सीधे-सादे आठ टेबल और बत्तीस कुर्सियाँ जो शाम आठ से रात्रि बारह बजे तक अनवरत रूप से खाली होती और भरती रहती हैं। जब तक आप चार आदमी नहीं हैं अलग टेबल की आशा मत कीजिए। यहाँ के ग्राहक दूसरों के साथ बेझिझक टेबल शेयर करते हैं। यहाँ अक्सर कुछ विदेशी युवक मिल जाते हैं। वातावरण कुछ हद तक अन्तर्राष्ट्रीय रहता है। कुछ दिनों पहले मेरे टेबल पर नाईजीरियन विद्यार्थी थे। आज ईरानी युवकों का साथ मिला। खुशमिजाज, जिंदा-

दिल, राजनीतिक रूप से जागरूक ।

बातचीत में पता चला, यहाँ कोई डेढ़ सौ ईरानी छात्र विविध विषयों में अध्ययनरत हैं । शाह के विरुद्ध ईरान में आन्दोलन चला था तब ये यहाँ चुप नहीं बैठे थे । शहर की दीवारों पर शाह विरोधी नारे भोपाल में और यहाँ आज भी दिखायी पड़ते हैं । नतीजा यह हुआ था कि हजारों छात्रों को ईरान से पैसा आना बन्द हो गया था । मुश्किलों का सामना करते हुए पढ़ते रहे । अब वहाँ शाह नहीं है । क्रांतिकारी सरकार बनी है—ये खुश हैं ।

पड़ोस में बैठे युवक से राजनीतिक सवाल पूछा तो वह थोड़ा झिझका । टालने के लिए उसने कहा—अखबार में तो यह आता ही है ।

मैंने कहा—अखबार में तो सब कुछ नहीं आता । दूसरे, मैं कोई खुफिया विभाग में नहीं हूँ और आपका नाम भी नहीं जानना चाहता ।

वह धीरे-धीरे खुला । अयातुल्ला खुमैनी और अयातुल्ला तेलगनी के बीच सैद्धांतिक विवाद चल रहा है—उसमें कौन जीतेगा । उसने कहा, तेलगनी । शाह के जमाने में उसने बारह साल जेल की यातनाएँ सही हैं । खुमैनी तो विदेशों में ही रहे । खुमैनी हजार साल पुराने इस्लामिक स्टेट की बात करते हैं । तेलगनी आधुनिक हैं, आर्थिक विकास की बात करते हैं । युवा आशाओं के प्रतीक हैं । वे ईरान में लाल मुल्ला के नाम से प्रसिद्ध हैं ।

बाजू के टेबल पर उसके साथी बैठे थे । इनमें से एक निहायत खूबसूरत ईरानी लड़की भी थी । जीन्स और शर्ट पहने हुए । वह खाना नहीं खा रही थी । अल्यूमीनियम के एक डिब्बे में खाना भरती जा रही थी । उसकी ओर इशारा करते हुए उसने कहा, इस डाक्टर के लिए खुमैनी के राज में जगह कहाँ होगी ।

उठकर जाने के लिए उसने क्षमा माँगी । डाक्टर लड़की ने जो नाटे कद की थी, डिब्बा अपनी कमर पर सहज भाव से रखा, जिस तरह भारतीय औरतें पानी की गागर रखती हैं । हँसते हुए वे लोग बाहर निकले ।

हर आदमी कुछ खुसूसियत—विशेष आदतें पाल रखता है। और उनके बिना दिनचर्या पूरी नहीं होती, बल्कि तकलीफ होती है।

मेरा एक मित्र है। उदार और जिंदादिल। संयोग से भोपाल में होटल में बाजू के कमरे में ठहरा था। सुबह उसके साथ चाय पी तब हम दोनों अखबार देख रहे थे। लगभग हर मुखपृष्ठ पर भोपाल में पानी की दिक्कत के बारे में न्यूज थी। बारह सौ पचास कालोनी में एक रुपये का एक कनस्तर पानी। उसने कहा—पानी का आज यह भाव है तो मई के अंत में क्या होगा? मैंने कहा—अब वाणिज्य व्यवसाय के पृष्ठ पर पानी के आज के भाव छापने पड़ेंगे।

उस दिन गर्मी तेज थी। दोपहर चार बजे के लगभग वे मेरे कमरे में आए—केवल लुंगी पहने हुए। पसीना नंगे बदन से चू रहा था। उनकी व्यथा थी: नल में उबलता हुआ पानी आ रहा है। बाल्टी में एक घंटे से पानी भरकर रखा है वह ठंडा होता ही नहीं। नहाएँ कैसे?

मैंने कहा—अमां यह भी कोई नहाने का वक्त है, शाम सात-आठ बजे नहाइयेगा।

—भाई साहब, तब तो नहाऊँगा ही। दोपहर आराम करने के बाद नहाने की आदत है, उसके बिना कैसा-कैसा तो लगता है।

मैंने हमदर्दी जताते हुए मज़ाक में कहा—हाँ, बात तो परेशानी की है। बर्फ मँगा लो।

वे एकाएक प्रसन्न हो गए—यार, आइडिया। बर्फ तो पानी ठंडा करने के लिए ही होता है। बेयरे से दो रुपये का बर्फ मँगवाया।

नहा-धोकर पुनः आया—वाकई मजा आ गया। क्या आइडिया था तुम्हारा?

पर उनका यह आनन्द कितना क्षणिक था। थोड़ी देर में वे पुनः रूमाल से पसीना पोंछ रहे थे।

इन्दौर-बिलासपुर एक्सप्रेस दो घंटे लेट थी। भोपाल से जोड़े जाने वाले जबलपुर कोच में कुछ लोग सो रहे थे। कुछ जाग रहे थे। डिब्बे में रोशनी बहुत ही मंद थी। पंखे चल नहीं रहे थे। चार अधिकारीनुमा लोगों

का ग्रुप राजनीतिक बहस में व्यस्त था।

एक ने कहा—अरे रहने भी दो यार। सब दिखावे की बातें हैं। यही लोग जब सत्ता में आये तब कह रहे थे, बड़ी सादगी से रहेंगे। और अब तो एक-एक बँगले की साज-सज्जा पर लाख रुपये खर्च हो रहे हैं।

दूसरे ने कहा—यार वर्माजी, फिर भी कुछ सोशलिस्ट मंत्री तो सेकंड क्लास में यात्रा करते हैं।

वर्माजी ने कहा—अरे यार, वह सब तो न्यूज में बने रहने के नाटक हैं। एक तरफ ये दिखावा, दूसरी ओर निजी कामों के लिए शासकीय हवाई जहाज का उपयोग किया जाता है। हमारा देश भी अजीब है। लोग उल्टे-सुल्टे कपड़े पहन लें तो त्यागी और निःस्वार्थी कहलायेंगे। लँगोटी पहन-कर ही सब गांधी बन जाना चाहते हैं। अपने पवन दीवान राज्य मंत्री हैं। लँगोटी पहनते हैं, तो लोग उनको त्यागी-तपस्वी समझते हैं। चार-छः माह में एकाध बार नाराज होकर अपने राजिम आश्रम में चल देते हैं। अखबारों में न्यूज छपती है—मानमनौवल का नाटक चलता है। मंत्री पद छोड़ते नहीं, पुनः भोपाल आ जाते हैं। तथाकथित समाजवादी मंत्री महीने में बीस रोज अपनी कांस्टीटूएंसी में रहते हैं। शुरू में तो ये कहते थे, मंत्री लोग केवल दो रोज ही दौरे पर रहेंगे।

तीसरे सज्जन ने कहा—तो वे यहाँ रहकर ही क्या करें। उनके पास कुछ काम भी तो हो। फाइल तक तो उनके पास आती नहीं। इसलिए दौरे पर रहकर अपने जिले के अधिकारियों को परेशान करते हैं।

मैंने बातचीत में शरीक होते हुए कहा—ये सब सुनकर तो लोग भी ऊब गए हैं। पर हाँ, वर्माजी की यह बात सही है कि हम लोग आम तौर पर दिखावे से बहुत प्रभावित होते हैं। आदमी को अच्छा मानने के लिए हमारे मानदण्ड विचित्र हैं। लँगोटी पहन लीजिए, हिप्पीनुमा कपड़े पहन लीजिए या भगवे रंग का पैंट-कुर्ता पहनकर गले में रुद्राक्ष की माला में रजनीश के फोटो वाला पेन्डेन्ट पहन लीजिए। बस लोगों की नजर में आप असामान्य और आदरणीय हो गए। यह ठीक वैसा ही है जैसे कुछ लोग पर्सनैलिटी बढ़ाने के लिए दाढ़ी-मूँछ बढ़ा लेते हैं।

वर्माजी ने और उत्साह से कहा—हमारे एक मित्र हैं। मारवाड़ी हैं,

अच्छा-खासा धंधा है। अभी कल मुझसे कह रहे थे, ज्योति बसु बहुत सज्जन आदमी है। कपड़े भी अपने हाथ से धोता है।

तो मैंने उनसे कहा—भाई, मैं भी कभी-कभी अपने कपड़े धो लेता हूँ—यह क्या कोई योग्यता है सज्जन होने की ! ज्योति बसु के दूसरे गुणों से, उसके विचारों से मतलब नहीं, बस कपड़े धोने की बात पर उन्होंने फैसला कर लिया।

तीसरे सज्जन ने बातचीत का रुख बदलने की गरज से कहा—हो गई दो घंटे लेट। इमरजेंसी थी तो अच्छा था, ट्रेनें तो राइट टाइम चलती थीं।

वर्माजी ने कहा—इमरजेंसी और इमरजेंसी वाली तो हो गई बदनाम। अब तो इस देश को सैनिक तानाशाही ही ठीक करेगी।

मैं चौंका। कहा—सैनिक तानाशाही अच्छी होती है, ये कैसे मान लिया आपने। नव आजाद देशों में कितनी ही सैनिक तानाशाहियाँ कायम हुईं। एक भी तो सफल नहीं हुई। सिवा इजिप्त में नासेर के। वहाँ भी नासेर के बाद से क्या हालत है, देख लीजिए। पाकिस्तान में बीस वर्षों से सैनिक तानाशाही है, वहाँ क्या तरक्की हो गई? पाकिस्तान तो बुरी तरह से विदेशी कर्जों में डूबा हुआ है और लगातार अस्थिरता बनी हुई है। सैनिक तानाशाही व्यवस्था प्रगति की समस्या का कोई हल थोड़े ही है।

उसका कहना था—वर्तमान स्थिति में कोई तीसरा विकल्प भी तो नहीं बन रहा। जितनी पार्टियाँ हैं जनता में और अन्य भी वे तो सब टूटकर अलग गुटों में बँट रही हैं। भ्रष्टाचार के आरोप और अवसरवादी जोड़-तोड़ की राजनीति रह गई है। ऐसी ही स्थितियाँ रहती हैं जब सैनिक तानाशाही जन्म लेती है। इंदिरा जी से थोड़ी बहुत उम्मीद थी लोगों को, तो अभी दिल्ली में कांग्रेस की बैठक में स्पष्ट हो गया कि वे संजय को छोड़ेंगी नहीं। और वही उनको ले डूबेगा। कम्युनिस्ट भी तो बँटे हुए हैं। नहीं तो आज उनके लिए सबसे बढ़िया अवसर है। कुल मिलाकर चित्र बहुत धुँधला और निराशाजनक है।

इतने में ट्रेन आ गई। हलचल मच गई। लोग बिखरने लगे।

कुछ देर बाद ट्रेन चल पड़ी। खिड़की से ठंडी हवा आ रही थी। चाँद डूबने को था। सितारे साफ आसमान में तेजी से चमक रहे थे। पिछले

पन्द्रह दिन में भिन्न-भिन्न वर्ग के लोगों से चार-पाँच बार यह बात सुन चुका हूँ। हवा का रुख किधर है, ये बातें क्यों उठ रही हैं। काफी देर तक ठंठी हवा के बावजूद भी नींद नहीं आ रही थी।

मटमैले पीले प्रकाश में बाहर का दृश्य बहुत ही धुंधला और अस्पष्ट लग रहा था।

7 मई '79

एक फैंटेसी…

डोली में दूल्हे राजा बैठे हैं। पीछे कुछ औरतें गाती हुई आ रही हैं। सामने एक बुजुर्ग कहारों से डोली को ट्रेन के एक डिब्बे के दरवाजे के ठीक सामने रुकवा रहे हैं। दूल्हा पैदल कैसे चलेगा ? संभव होता तो डोली समेत दूल्हे को डिब्बे में ले जाते।

यह दूल्हा गाँव के किसी बड़े किसान का बेटा है। धोती, सिल्क का कुर्ता और पीले रंग का साफा पहने पालथी मारकर बैठा है। मुझे ऐसे दूल्हे और मंत्री एक-से लगते हैं। दूल्हा यह भूल जाता है कि बारात वापस घर पहुँची और उसे पैदल चलना है। मंत्री यह भूल जाते हैं कि शाम को उनसे स्तीफा माँगकर उन्हें गाड़ी विहीन कर दिया जाएगा और घर पैदल या रिक्शे में जाना पड़ेगा। दोनों को बाद में कुछ समय तक बड़ा अटपटा लगता है।

इसी ट्रेन में सवार होते दो और दूल्हे भी देखे। पैंट, बुशशर्ट और धूल से सने चरमराते नए जूते, कंधे पर चमड़े के पट्टे में लगी पीतल की मूठ वाली कटारी, गले में सुनहरे सितारों वाली माला। पता चलता है किसी खदान या कारखाने का मजदूर है, दोस्तों के साथ डिब्बों में जगह ढूँढ़ते हुए बैठ जाते हैं। उनके बर्ताव में कभी कोई अस्वाभाविकता नहीं। वे जानते हैं कि कल उन्हें मजदूरी करने जाना है। किसी ट्रांजिस्टर पर बज रहा गाना सुनाई पड़ता है—'सजन रे झूठ मत बोलो, खुदा के पास जाना है। न हाथी है न घोड़ा है, वहाँ पैदल ही जाना है।'

सिंगरौली भी अजीब-सी जगह है। मध्यप्रदेश में है। एन० टी० पी० सी० का सुपर थर्मल ग्राम कोटा उत्तरप्रदेश में बन रहा है जो पैंतीस किलोमीटर दूर है। यह समझ में नहीं आता कि ताप विद्युत संयत्र का नाम सिंगरौली से क्यों जोड़ा गया है। नाम के धोखे में लोग मेरी तरह यहाँ आ जाते हैं। शाम छ: बजे पहुँचने पर मालूम होने पर सदमा होता है कि पैंतीस किलोमीटर दूर जाने के लिए कोई यातायात सेवा नहीं है। इस क्षेत्र की जनता दोनों प्रदेश के आर० टी० ओ० की शुक्रगुजार है कि उनमें झगड़े की वजह से कोई सीधी परिवहन सेवा ही नहीं चल सकती। कोयले के डम्पर और सैकड़ों ट्रक नियम विरुद्ध यात्रियों को ढोने का व्यापार न करें तो आप कहीं पहुँच ही नहीं सकते।

पूनम कल है। आसमान में आम तौर पर तेजी से चमकने वाले सितारे पूरे गोल चाँद की चमक के सामने बुझे-बुझे और फीके लगते हैं। चाँदनी निखार पर है। रेलवे प्लेटफार्म पर लगे गुलमोहर के झाड़ पर फूलों का लाल हिस्सा काला, पीला हिस्सा सफेद और हरी पत्तियाँ बिलकुल स्याह लगती हैं। कुछ दूर पीपल के बड़े पत्ते मंद-मंद बहती हवा में जब उलटते-पलटते हैं तब चाँदनी की तरह चमक उठते हैं।

बीच-बीच में ठंडी हवा के तेज झोंकों के साथ कुछ दूर स्थित पहाड़ी से जंगली फूलों की मोहक खुशबू आ जाती है। दिन भर की तेज तपिश के बाद बड़ा सुकून मिल रहा है। वही खुश्बू दिमाग पर मादक नशे की तरह छा जाती है।

दोपहरी में चमक रही कोलतार की साफ-सुथरी सड़कों पर दूर से जानवरों का झुंड भागता हुआ आ रहा दिखाई पड़ता है। थोड़ा करीब आने पर मालूम पड़ता है कि अनगिनत गाय-बैलों का समूह है। शाम को जंगल से चरकर लौटने वाले जानवरों की मस्ती इनमें नहीं। बौखलाए हुए जानवरों का यह जुलूस है। आगे-पीछे कोई आदमी नहीं दिखता। रहा भी होगा तो इन उन्मत्त जानवरों ने उसको सींगों पर उछालकर कुचल डाला होगा। मुझे डर लगता है। हरी लान के उस सिरे पर सीमेंट की बेंच पर झुके हुए पेड़ पर चढ़ने के लिए भागता हूँ। ज्यों-त्यों पेड़ के तने पर कुछ ऊँचाई पर पहुँच बमुश्किल लटका हुआ हूँ। जानवर दुबले-पतले

मरियल किस्म के हैं। मरियल आदमी भी गुस्से में ताकतवर हो जाता है, घास दो, चारा दो। विनोबा मुर्दाबाद। मोरारजी की धोखाधड़ी नहीं चलेगी। अरे ! ये जानवर भी राजनीतिक रूप से जागरूक हैं। हरी-भरी लॉन को नहीं चरते, मेरी ओर नहीं मुड़ते। सड़क पर तेजी से संसद भवन की ओर बढ़ रहे हैं। कुछ दूर पीछे हथियारों से लैस सैनिक गाड़ियों में आ रहे हैं।

भागते हुए गाय-बैलों का वह जुलूस 'चारा दो, घास दो' के जोरदार नारों के साथ सींग टेढ़े कर चारों ओर से घेरता आ रहा है। आर० एस० एस० के कुछ स्वयं सेवक जो सामने थे, इस आक्रमण से धराशायी हो जाते हैं। लाठियाँ, टोपियाँ सब छोड़कर भाग रहे हैं। संजय और संघ के स्वयं सेवक इस भगदड़ में एक-दूसरे से टकराते हैं। पर लड़ते नहीं, सब जान बचाने के लिए भाग रहे हैं। धराशायी स्वयं सेवक को बुरी तरह कुचलते हुए उन्मत्त जानवर संसद की ओर बढ़ रहे हैं। मोरारजी, चौधरी सभी इस अप्रत्याशित हमले से बचने के लिए भाग रहे हैं। जो गिरते हैं, वे कुचले जा रहे हैं। चारों ओर कोलाहल, चीख-पुकार और भयानक कुहराम मचा हुआ है।

डीजल इंजिन वाली मालगाड़ी धड़धड़ाती हुई गुजर रही है। मैं चौंककर जाग जाता हूँ। गुजर रहे हर वैगन के साथ हवा का ठंडा-गर्म झोंका आता है। आँखें मलकर देखता हूँ। चाँदनी पूरे निखार पर है। सिंगरौली के स्टेशन पर सीमेंट की बेंच पर बैठा हूँ। खौफनाक ख्वाब से मुँह बदजायका हो गया है। घड़ी साढ़े नौ बजा रही है। पन्द्रह-बीस मिनट में यह सब हो गया।

टीले के नीचे सड़क के उस पार होटल में खाने के लिए जाना होगा। कुछ देर बाद शायद वहाँ भी नहीं मिलेगा।

सीढ़ियों से उतरते हुए कोलतार की सड़क पर इत्मीनान से बैठे तीन-चार गाय-बैल जुगाली करते हुए दिखाई पड़ते हैं। इच्छा होती है, उनसे पूछूँ—वे दिल्ली से कब लौटे ?

20 मई '79

शाहजहाँ के लिए चन्दा दो !

ताजमहल के मुख्य प्रवेश द्वार पर एक छोटी सी तख्ती पर हिन्दी और अंग्रेजी में लिखा हुआ है कि ताजमहल किस सन् में कितने वर्षों में मुगल शहनशाह शाहजहाँ द्वारा अपनी बेइंतहा अजीज बेगम मुमताजमहल की याद में बनवाया गया। उस सूचना का अन्तिम वाक्य यों है—मुमताजमहल ने अपने दाम्पत्य जीवन (सन् 1513 से 1532) में चौदह बच्चे पैदा किए।

माना हमने कि उस समय फैमिली प्लानिंग जैसी कोई चीज नहीं थी। ज्यादा संतानें एक प्रकार की सम्पत्ति मानी जाती थीं। पर ताजमहल सम्बन्धी जानकारी देने में इस सूचना का क्या तुक है कि बेगम उन्नीस साल में चौदह बच्चों की माँ बनी। ताज दुनिया का माना हुआ अजूबा है। उसकी खूबसूरती, संगतराशी, बनाने वाले डिजाइनर (क्योंकि तब चीफ इंजीनियर, प्रोजेक्ट इंजीनियर या आर्किटेक्ट जैसे भारी-भरकम पद नहीं हुआ करते थे) का नाम आदि की कोई जानकारी सूचना-पटल पर लिखी होती तो कोई मायने था। ताज के परिचय में लिखा यह एक वाक्य पर्यटक विभाग की जड़ नौकरशाही के क्रूड-टेस्ट का नमूना है। बीस साल पहले भी लकड़ी का वह छोटा सा बोर्ड जहाँ था आज भी है। बीच-बीच में साफ कर पुन: वही लिख दिया जाता है। अंग्रेजों के जमाने से लिखा हुआ यह मैटर बदलने के लिए शायद डायरेक्टर टूरिज्म या मंत्रालय की इजाजत लेनी पड़ती होगी। कौन नई फाइल खोले।

दूसरे देशों में ऐतिहासिक स्मारकों या पुरातत्व संग्रहालयों में जाइए,

वहाँ इतनी जानकारी बोर्ड पर लिखी रहती है कि आम आदमी अन्दर जाते समय मानसिक रूप से उस कलाकृति को सराहने के लिए तैयार रहता है। यहाँ तो बस मुख्य द्वार पर एक तख्ती टाँग दी। लीजिए दो-तीन रुपये का टिकट, जाइए अन्दर, घूम-घामकर वापस आ जाइए। गाइड रखने की क्षमता यदि है तो ठीक वरना घर जाकर बच्चों की इतिहास की किताब पढ़ लीजिए। सॉरी ! आजकल तो बच्चों को सामाजिक अध्ययन में ही इतिहास और जुगराफिया पढ़ा दिया जाता है, जिसमें इसकी भी कोई गुंजाइश नहीं।

गढ़वाल क्षेत्र में जोशीमठ के पास कोई बारह-चौदह किलोमीटर लम्बी फूलों की घाटी है। ऐसा एक पत्रिका में पढ़ा था। सपरिवार जाने की सोच रहा था। लखनऊ में पर्यटन विकास के दफ्तर में जानकारी लेने गया।

दो-तीन कमरों में पूछते हुए दफ्तर के पीछे के हिस्से में अलग से बने एक मकान में पहुँचा जहाँ सूचना केन्द्र होने का कोई बोर्ड नहीं है। दो-तीन बाबू बैठे दिखे। संकोच के साथ अन्दर जाकर पूछा—फूलों की घाटी पर तो नहीं पर बद्री-केदार पर है—उसमें इसकी भी जानकारी है। और उन्होंने आकर्षक मुखपृष्ठ वाला फोल्डर दिखाया।

मैंने कहा—वही दीजिए।

पर्यटक साहित्य के रैक में देखकर उन्होंने कहा—अंग्रेजी वाला खत्म हो गया है। पर वहाँ जुलाई से सितम्बर तक फूल खिलते हैं। आप अभी वहाँ जा सकते हैं।

मैंने कहा—देखिए, अगस्त का अन्त तो चल रहा है। परिवार वालों को सूचना देकर बुलाने के लिए आठ-दस रोज का समय चाहिए। सितम्बर के अन्त तक वाली बात तो ठीक है। अन्यथा दो हजार किलोमीटर आकर उन्हें फूलों की जगह पौधे और झाड़ियाँ देखनी नहीं हैं।

संतोषजनक उत्तर न मिलने की दशा में खीझकर वापस लौट आया।

कोई छः साल पहले पूर्व जर्मनी के ड्रेसडन शहर की विश्वप्रसिद्ध आर्ट गैलरी देखने के लिए वियतनाम, स्पेन, अमरीकी और हम भारतीयों के डेलीगेशनों को ले जाया गया। चारों की भाषा अलग थी। हमारे

दुभाषियों ने प्रवेश-द्वार से चारों भाषाओं के तैयार कैसेट्स के सेट ले लिए और चारों दलों को एक के बाद एक दस मिनट के अन्तर से अंदर भेजा। पूछने पर उन्होंने समझाया कि कमरों में सभी भाषाओं के टेप एक साथ बजेंगे तो शोर होगा और किसी को कुछ भी समझ नहीं आयेगा। तैलचित्रों के इतिहास, विशेषता और चित्रकारों के सम्बन्ध में इतनी विस्तृत जानकारी टेप की गई थी कि दो घंटे बाद बाहर निकले तब लगा कि यूरोप के सभी पुराने प्रसिद्ध चित्रकारों और कला को हमने समझ लिया है और हम उस पर बहस कर सकते हैं। छोटे-छोटे किलों में भी रोशनी, लिफ्ट आदि की व्यवस्था होती है। ये किले हमारे फतहपुर सीकरी, लाल किले और ग्वालियर फोर्ट के मुकाबले कुछ भी नहीं हैं।

पिछले बीस वर्षों में मैंने ताजमहल कोई दस बार देखा है। आगरे में जब भी समय मिलता है ताज और दयालबाग स्थित राधा स्वामी मंदिर अवश्य देख आता हूँ। ताज साढ़े चार सौ वर्ष पूर्व बना था, राधा स्वामी का मंदिर कोई सत्तर वर्षों से बन रहा है और शायद इतना ही समय पूरा होने में लगेगा। संगमरमर पर निहायत बारीक और खूबसूरत संगतराशी, पच्चीकारी का काम इतने ही विशाल पैमाने पर आबू स्थित देलवाड़ा के जैन मंदिरों में देखने को मिलता है। हमारे देश में एक से बढ़कर दूसरी सैकड़ों एतिहासिक इमारतें हैं। पर हर जगह ऐसा महसूस होता है कि आप जबरन देखने आ गए हैं। पर्यटन विभाग की पूरी कल्पना शक्ति टिकट बेचने और होटल बनाने में लगी हुई है। बनी-बनायी चीजों को आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करना या आकर्षक वातावरण बनाना उनकी समझ से परे है।

पहली बार ताज देखा था, उसके बाद जब भी गया हूँ तो यह ही महसूस होता है कि धीरे-धीरे यह खराब होता जा रहा है। टूट रहा है। मरम्मत करने वालों की एक पूरी फौज वर्षों से लगातार काम करती आ रही है। पर यमुना के तरफ वाले पिछले हिस्से में जाइये तब मालूम पड़ता है कि कैसा काम हो रहा है इमारत के निचले हिस्से में जहाँ संगमरमर के बड़े-बड़े पत्थर जड़े हुए हैं। उनमें टूटन होने पर पूरा पत्थर नहीं बदला जाता। छोटे टुकड़े को काटकर वहाँ फिट कर दिया जाता है। सैंकडों वर्ष

पुराने पत्थर पर लगाया गया यह नया टुकड़ा बढ़िया बनारसी रेशमी साड़ी पर आधुनिक नाईलोन के पैवन्द जैसा लगता है। वर्षों से यह बहस जारी है कि चालीस मील दूर स्थित मथुरा रिफायनरी के प्रदूषण की वजह से ताज खराब हो रहा है। न जाने कितनी कमेटियाँ और कितने विशेषज्ञ नियुक्त हुए, नतीजा वही हुआ—ताज का क्षय अपनी जगह बरकरार है। केवल इतना इत्मीनान है कि ताज अभी भी इतना मजबूत है कि कम से कम हमारे सामने तो नहीं गिरेगा। शाहजहां तो बेवकूफ था जो उसने आने वाली दसों पीढ़ियों का ख्याल कर इतनी बुलन्द और पुख्ता इमारत बनाई। हम तो अपनी पीढ़ी की चिन्ता नहीं करते ! आगे वालों का तो सवाल ही पैदा नहीं होता।

सूर्यास्त होने को था। हम जिस लॉन पर बैठे थे, थोड़ी दूर पर एक विदेशी दम्पति लॉन पर लेटे-लेटे ताजमहल को निहार रहा था। हमारे पास से एक प्रौढ़ गुजराती जोड़ा ताज देखकर लौटता हुआ गुजरा। बोली से समझ गया कि ये पटेल हैं। देवीजी अपने पतिदेव से कह रही थीं, ये लोग घंटे भर से बैठे क्या देख रहे हैं ? आदमी ने कहा, अरे भाई ये लोग दस-बीस हजार रुपया खर्च कर देखने आए हैं। ये ज्यादा देर देखकर पैसा वसूल करते हैं। मैं हैरान रह गया। सौंदर्य का भी अर्थशास्त्र से इतना सीधा सम्बन्ध हो सकता है यह पहली बार समझ आया !

ताजमहल को देखने हजारों की संख्या में देशी-विदेशी पर्यटक आते हैं। ताज की खूबसूरती हर पहर अलग होती है। इस बार देर तक रुककर रात को ताज निहारने की सोची थी। ख्याल नहीं रहा कि कृष्णपक्ष की शुरुआती रातें हैं। पर कुछ लाइटें होंगी, मामूली चाँदनी होगी और उसमें ताज देखा जा सकेगा। आठ बजे तक बैठे रहे। पता चला कि भीतर गुम्बद में लगे एक फानूस के सिवा इतने बड़े हाते में एक भी लाइट नहीं है। इमारत के भीतर, इमारत का सौंदर्य बनाए रखने की दृष्टि से लाइटें नहीं लगायी जानी चाहिए। पर बाहर दूर से यदि सर्चलाइट से रोशनी डाली जाए तो रात को देर गए तक हजारों की संख्या में लोग लॉन पर बैठकर इसकी खूबसूरती का जाम पी सकते हैं। पर्यटन विभाग के पास यह कल्पना-शक्ति है ही नहीं। और तो छोड़ दीजिए, इतने विशाल हाते में कहीं भी प्रसाधन

(टायलेट) की व्यवस्था नहीं है । एक विदेशी पर्यटक ने मुझसे लेवेटरी के बारे में पूछा तो मैं बड़ी मुश्किल से समझ पाया कि विशाल बगीचे के किसी कोने में वह चला जाए । दूसरा कोई इलाज नहीं है । वह कंधे उचकाता हुआ आश्चर्य व्यक्त करता मुस्कराकर चल दिया ।

ताज में मुमताज़ और शाहजहाँ की दो-दो कब्रें हैं । तहखाने में असली और गुम्बद के नीचे दिखावे की । दोनों कब्रों पर मोमबत्तियाँ जला कर रखी जाती हैं । दोनों जगह जो सरकारी मुलाजिम बैठते हैं वे पहले से वहाँ कुछ रेजगारी और नोट सजाकर रख देते हैं । हर आगन्तुक को वे इशारे से पैसे बताते हैं कि जनाब आप भी कुछ डालिए । धर्मप्राण हैं हम लोग, हिन्दू हो या मुसलमान पैसे डालकर धर्म सुरक्षित हो जाता है । शाम तक पचास-सौ रुपये जमा हो जाते हैं । विदेशी लोग तो यह समझकर पाँच-दस के नोट छोड़ जाते हैं कि शायद यहाँ रिवाज हो ।

कोई यह समझने को तैयार नहीं है कि शाहजहाँ कोई फकीर या बाबा नहीं था । न यह कोई पीर की मजार है । शाहजहाँ ने तो बशौक अपनी अज़ीज़ बेगम की याद में साढ़े चार सौ साल पहले सात करोड़ रुपये खर्च कर यह मकबरा बनवाया था । भीख माँगने के लिए नहीं । लगता है किसी दिन तंग आकर वह कब्र से निकल खड़ा होगा और चीखकर हुक्म देगा, तोड़ दो इस ताज को, हटाओ इन नाकारा लोगों को ।

मजे की बात है कि पर्यटन विभाग का एक बड़ा अधिकारी इस राष्ट्रीय स्मारक में तैनात है । वह भी इस घृणास्पद कार्रवाई को नहीं रोक सकता । शायद इसमें सबका साझा होगा । किसी जमाने में एक शायर ने भावनाओं में बहकर लिखा था— शाहजहाँ ने मुमताज़महल की याद में ताजमहल बनाकर 'गरीबों की मुहब्बत का उड़ाया है मज़ाक' । इससे मैं सहमत नहीं हूँ । क्योंकि मैं ताजमहल को सेंटीमेंट्स के आधार पर नहीं परन्तु वास्तुशिल्प और सांस्कृतिक धरोहर के रूप में देखता हूँ ।

फिर भी यदि मुझे नज्म लिखना आता तो मैं लिखता—'ऐ शाहजहाँ तू क्या उड़ायेगा हमारी मुहब्बत का मज़ाक । देख हम तेरे नाम पर भीख माँगकर कैसा उड़ाते हैं तेरा मज़ाक ।'

10 जून '79

सीताजी जेल में—गोपालजी सड़क पर !

जयपुर में केवल एक चर्चा थी। गोपाल और सीता की शादी की।

यों तो हमारी पौराणिक कथाओं के अनुसार गोपाल की पत्नी राधा होनी चाहिए। सीता तो राम की ही हो सकती है। पर जर्मन लड़की एरिका ने रिक्शे वाले गोपाल से शादी करने के बाद अपना नाम सीता पसन्द किया था।

एरिका पश्चिम जर्मनी के फ्रेंकफर्ट नगर की हिप्पी है। मार्च में जयपुर आने पर स्टेशन में बाँका जवान गोपाल रिक्शे वाला मिला। अन्य टूरिस्टों की तरह दो रोज उसे जयपुर दिखाता रहा। दक्षिण भारत घूमने के बाद एरिका जून में जयपुर आयी और पुनः गोपाल मिला। प्रथम दृष्टि के प्रेम का अंत विवाह में हुआ।

गोरी जर्मन लड़की दिखने में चाहे कैसी ही हो, एक सायकिल रिक्शा वाले को ब्याहे हम भारतवासियों के लिए तो अजूबा ही है। जयपुर के चारों दैनिक और दिल्ली के अखबारों ने गोपाल को हीरो बना दिया। क्या किला फतह किया है !

इन्टरव्यू लेने के लिए होड़ लग गयी। हर एक दूसरे से कुछ विशेष बताने के प्रयास में नमक-मिर्च-खटाई डालता गया।

पर भेंट-वार्ताएँ गोपाल की नहीं छपती थीं। इन्टरव्यू तो सीता देवी के ही छपते थे। स्काईलैब की भयावह और राजनीति की शुष्क न्यूज़ के बीच एक रोमांटिक कहानी विदेशी लड़की की कितनी सुखद होती है।

भारतीय फिल्मों में अमीर हीरो गरीब हीरोइन से, शहर का लड़का गाँव की अल्हड़ लड़की से शादी कर लेता है तो हम कहते हैं—वाह-वाह ! क्या क्रांतिकारी कदम उठाया है। यह कहानी तो उससे भी बढ़कर थी।

तो सीता देवी के बयान पढ़ें। मैं पुनर्जन्म को मानती हूँ। गोपाल से पहली बार मिली तो मुझे लगा कि मेरा परिचित है ! पूर्व जन्म में मेरा पति था। वैसा ही सीधा-सादा और भोला यह गोपाल है। दो दिन साथ घूमे। छोटे होटलों में साथ-साथ खाते और चाय पीते थे। (लड़की ने गोपाल के साथ देशी ठर्रा अवश्य पिया होगा पर हीरोइन के बारे में ऐसा कैसे छाप सकते हैं) दक्षिण भारत घूमकर यहाँ आई तो पुनः गोपाल मिला। विश्वास हो गया कि गोपाल ही मेरा पूर्व जन्म का पति है।

गोपाल शरमाता था। उसने अपने दोस्तों के जरिए प्रपोज़ किया। मैंने मान लिया। आर्यसमाज मंदिर में हमने शादी की। अब मेरे पास दूसरों के पचासों पत्र और प्रस्ताव आते हैं कि वे मुझसे शादी करना चाहते हैं। पर मुझे पैसे वालों से कोई मतलब नहीं। मैंने अपने परिवार को सूचना दे दी है। यकीन है कि गोपाल के और मेरे परिवार वाले हमारी शादी को सहर्ष स्वीकार करेंगे। मैं हर तकलीफ के बावजूद गोपाल को नहीं छोड़ूँगी। जरूरी पैसों के लिए मैं छोटा-मोटा बिज़नेस शुरू करूँगी। आदि।

हमारे देश में ऐसे वीरतापूर्ण कार्यों की कद्र करने वालों की क्या कमी है। उदयपुर के एक थ्री-स्टार होटल ने नवदम्पति को हनीमून मनाने के लिए एक सप्ताह की निःशुल्क सेवा का आफर दिया। दूसरे ने उदयपुर जाने-आने का प्लेन का किराया आफर किया।

पसीना बहाकर पैसा कमाने वाले गोपाल को लगा जैसे कोई बड़ी लाटरी लग गई हो। वह रातोरात सम्माननीय बन गया। रिक्शा बेच दिया। कुछ कपड़े बनवाये और कुछ सीताजी की सेवा में खर्च किया।

सोचा एक भेंटवार्ता ले लें। पड़ोसी ने बताया कि वे दोनों गोपाल के गाँव बाघमेल गये हैं।

दूसरे दिन ट्रेन में दिल्ली के अखबारों में पढ़ा—पुलिस ने गलत पासपोर्ट, निर्धारित समय से ज्यादा रुकने, गलत ढंग से देश प्रवेश आदि के मामले एरिका के विरुद्ध दर्ज किये हैं। पुलिस उसकी तलाश में गोपाल के गाँव गई

है। स्वाभाविक है जयपुर के अखबारों को अपनी हीरोइन के विरुद्ध एकदम से ऐसी न्यूज़ छापने में संकोच हुआ होगा। न्यूज़ एक रोज पुरानी थी, वहाँ की थी, फिर भी उन्होंने नहीं छापा था।

नागपुर पहुँचने पर पढ़ा—एरिका लैंड्स इन जेल। सीतादेवी गिरफ्तार की गई हैं और उन्होंने जर्मन दूतावास से सहायता माँगी है।

गोपाल राजपूत है। उसके परिवार वालों ने दूसरी जात की वह भी विदेशी लड़की से शादी करने के कारण दुत्कार दिया है। और उसे जाति-बाहर किया।

बात भी सही है, धर्म और जाति तो छोटे-मोटे लोगों के लिए होती है। कई क्षत्रिय राजा-महाराजाओं ने विदेशी लड़कियों को रानी बनाया। करोड़पति मयूर माधवानी गुजराती लोहाणा है, उसने फिल्मों की प्रसिद्ध हीरोइन मुसलमान मुमताज़ से शादी की, इनको किसी ने जाति-बाहर नहीं किया। पर गरीब गोपाल की यह हिमाकत समाज कैसे बर्दाश्त करता!

तो अब जर्मन हिप्पी लड़की की मेहरबानी से रिक्शे का मालिक गोपाल किराये का रिक्शा चला रहा है। नवदम्पति को सहायता देने को तत्पर सब लोग गायब हो गए हैं। पन्द्रह दिन आसमान में रहने के बाद अमरीकी स्काईलैब की तरह गोपाल जमीन पर उतर आया है, टुकड़े-टुकड़े होकर।

18 जुलाई '79

जयपुर

विधायक या बालू के टीले

आसमान में छितरे हुए बादल कुछ स्याह और कुछ कपास के गोले की तरह सफेद हैं। दिन भर जोर की बारिश करने के बाद थके हुए से साफ नीले आसमान में धीरे-धीरे खिसक रहे हैं।

पूनम यूँ तीन दिन बाद होगी पर बारिश से धुले आसमान में, जो चाँदनी की पीली झाँई लिए हुए है, चाँद चाँदी के एक बेढंगे गोले की तरह चमक रहा है। सामने एक सीधा तना हुआ पेड़ है जिसकी पतली टहनियाँ बहुत बारीक पत्ते लिए हुए आसमान की ओर एक हद तक सीधी उठी हुई हैं। पता नहीं क्या नाम है उस पेड़ का। एक बेल जिसके पत्ते हथेली से भी बड़े और चौड़े, गहरा हरा रंग लिए खूबसूरत ढंग के हैं, उस पेड़ के तने से काफी ऊँचाई तक लिपटी हुई है। उन पत्तों में पीपल के पत्तों सी चिकनाई और चमक नहीं है और हवा भी दिन भर बारिश से खेल करने के बाद जैसे थम सी गई है, इसलिए बेनाम उस पेड़ और बेल के पत्ते चुपचाप लटक रहे हैं।

आज दोपहर एक बजे से शाम छ: बजे तक लगातार तेज बारिश होती रही। इस मौसम की सबसे तेज बारिश मैंने यहाँ जयपुर में देखी। आलम यह था कि गलियाँ, नालियाँ, नाले, सड़कें, नदियाँ और चौराहे तालाब बने हुए थे। दिन में भी गाड़ियाँ और स्कूटर लाइटें जलाकर आहिस्ता-आहिस्ता चल रहे थे। इक्का-दुक्का सायकल रिक्शा वाले की हिम्मत और सवारी को मजबूरी की गवाही देता दिख जाता था। सड़कें

वीरान थीं । दुकानों के बरामदे में इकट्ठा लोग घंटों बारिश का इन्तजार कर थक गए तो 'देखा जाएगा' कहते हुए सड़कों पर भीगते हुए घरों को लौट रहे थे ।

वैसे अपने देश में सरकारी दफ्तरों में जहाँ तक संभव हो, काम न करने का या कम करने का रिवाज है । दफ्तर में जहाँ मुझे कुछ काम था ऑटो-रिक्शा में जाने के बावजूद पूरा भीग गया था । दूसरों की नहीं जानता मगर मुझे बारिश में भीगना पसंद है । अधिकारी, बाबू सबका काम न करने का मूड इस बारिश में पुख्ता हो गया । पर इस बारिश में कहीं जा भी नहीं सकते थे । सो सिगरेट पीते हुए टेबिलों के इर्द-गिर्द झुंड बनाकर रेडियो सुन रहे थे, गप्पें मार रहे थे । मैंने एक बाबू से मेरे काम की बाबत कहने की जुर्रत की । उसका जवाब था, ऐसी बारिश में कैसे कोई काम हो सकता है ! मैंने छत की ओर देखा, कहीं से पानी तो नहीं टपक रहा है । कमरे की सूखी सफेद पक्की सिलींग का कमरों से मुआयना करते हुए कहा, सही कहना है आपका । इस बारिश में कैसे काम हो सकता है ?

सुबह एक स्थानीय अखबार में शीर्षक पढ़ा—विधायक भी रेगिस्तानी बालू के टीलों की तरह इधर-उधर उड़ने लगे ।

शीर्षक कुछ लम्बा और अजीब-सा लगा । पर बिलकुल मौजूँ था । कितना विचित्र है, दो रोज पहले 40 विधायक जनता एस० बनाने को अलग हुए । मुख्य मंत्री शेखावत के पास केवल 10 का बहुमत, दूसरे दिन दो विधायक वापस लौटे और इंदिरा कांग्रेस के दो और विधायक दल बदल कर जनता पार्टी में शामिल हुए । विधायकों की अनेक घोषणाएँ, और दोनों ओर के नेताओं के दावे बहुमत जुटाने के ।

रेगिस्तान में बालू के टीबे (टीले) बनते हैं । तेज हवा जिसे यहाँ अंधड़ कहते हैं, इसलिए कि तेज आँधी में रेत इस कदर घुल जाती है कि आँख खुली रख ही नहीं सकते । तो रेत के टीले एक जगह से उड़कर दूसरी जगह नये बनते हैं । इन टीबों के भरोसे जगह विशेष की कोई पह-चान बन ही नहीं सकती । आज जहाँ थे कल वहाँ होंगे ही नहीं, विधायकों की हालत का सटीक वर्णन था उस शीर्षक में ।

दुर्भाग्य से मैं जहाँ पर ठहरता हूँ उसके करीब चाँद पोल क्षेत्र में कुछ विधायकों के बँगले हैं। सुबह घूमने जाता हूँ तो आजकल बड़ी गहमा-गहमी रहती है। बगीचों में छाँव में कुर्सियाँ पड़ी रहती हैं भरी हुई। इस बँगले से उस बँगले लोग आते-जाते दिखाई देते हैं। दूर सिविल लाइन से दोपहर को गुजरता हूँ, मुख्यमंत्री शेखावत का बँगला है, उसके सामने या हटकर महारावल लक्ष्मण का निवास है। पर यहाँ कोई चहल-पहल नहीं। विधायकों का व्यापार दूसरे केन्द्रों में चल रहा है।

एकबारगी सोचता हूँ, इन महानुभावों से भेंटवार्ता लूँ। दूसरा ख्याल आता है, ये क्या बात करेंगे? विधायकों को दूसरी ओर वाले खरीद रहे हैं फिर भी हमें विश्वास है कि बहुमत हमारे साथ है।

हम पिछले दिनों में आत्मविश्वास की बातें ही तो सुनते रहे हैं। मोरारजी भाई 279 सांसद जुटा नहीं सके पर अब भी दावा करते हैं कि बहुमत उनके साथ है।

चौधरी जी को पूरा विश्वास है कि बहुमत उनके साथ है। जनता पार्टी के दल-नेता जगजीवन राम का दृढ़ विश्वास है—चौधरी की सरकार टिकेगी नहीं, बहुमत हमारे साथ है।

इन सब आत्मविश्वासी बातों के बीच इंग्लैंड में दूसरा क्रिकेट टेस्ट शुरू होने के पहले कप्तान वेंकट राघवन का बयान पढ़ा, हमें विश्वास है कि दूसरा टेस्ट हम जीतेंगे। पहला तो एक इनिंग से हारे विश्व कप में एक भी मैच नहीं जीत सके पर हमें यकीन है कि हम अब जीतेंगे। दूर बज रहे रेडियो पर कामेन्ट्री सुनाई पड़ती है, इंग्लैंड ने भारत की पहली पारी के 93 रनों के मुकाबले में 8 विकेट पर 419 रन बनाकर दाँव डिक्लेयर किया। इस प्रकार 319 रन की बढ़त ले ली। पर हमें विश्वास है कि हम जीतेंगे।

प्रसिद्ध लेखिका अमृता प्रीतम की आत्मकथा 'रसीदी टिकिट' पढ़ रहा हूँ। निश्चय ही इसे चुनिंदा आत्मकथाओं की श्रेणी में रखा जा सकता है। पर उसके साहित्य को पंजाबी-भाषी कुछ अंध-विरोधी लेखकों ने जिस प्रकार पोर्नो (कामुक) साहित्य कहा था अमृता की वह बेबाक कथा हिन्दी के अधिकांश पाठकों को पोर्नो ही लगेगी। उसकी कविता की कुछ पंक्तियाँ

जो हृदय में गहरे जाकर बैठ गई हैं :

दुःखांत यह नहीं होता कि रात की कटोरी को कोई जिंदगी के शहद से भर न सके और वास्तविकता के होंठ···कभी उस शहद को चख न सके ।

दुःखांत यह होता है कि जब रात कटोरी पर से चंद्रमा की कलई उतर जाए और उस कटोरी में पड़ी हुई कल्पना कसैली हो जाय ।

दुःखांत यह नहीं होता कि आपकी किस्मत से आपके साजन का नाम-पता न पढ़ा जाए और आपकी उम्र की चिट्ठी सदा रुलाती रहे ।

दुःखांत यह होता है कि आप अपने प्रिय को अपनी उम्र की सारी चिट्ठी लिख दें और फिर आपके पास आपके प्रिय का नाम-पता खो जाए ।

दुःखांत यह नहीं होता कि आपकी जिन्दगी के लम्बे डगर पर समाज के बन्धन आपके काँटे बिखेरते रहें और आपके पैरों से सारी जिन्दगी लहू बहता रहे, दुःखांत यह होता है कि आपके लहू-लुहान पैरों से एक उस जगह पर खड़े हो जाएँ जिसके आगे कोई रास्ता आपको बुलावा न दे ।

दुःखांत यह नहीं होता कि आपके अपने इश्क से ठिठुरते शरीर के लिए सारी उम्र गीतों के पैरहन सीते रहें, दुःखांत यह होता है कि इन पैरहनों को सीने के लिए आपके विचार का धागा चुक जाए और आपकी कलम-सुई का छेद टूट जाय···

19 अगस्त '79
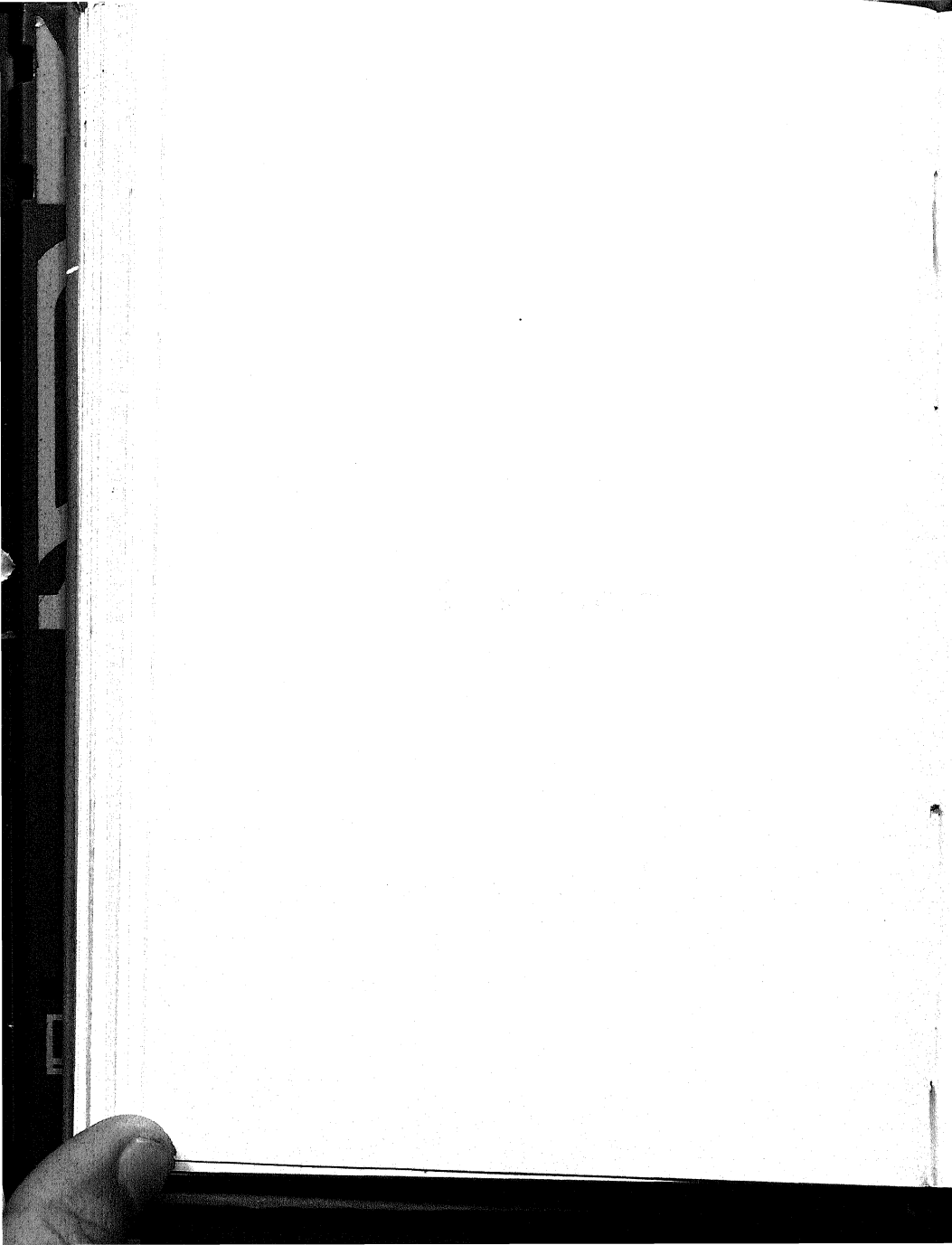
मेला दूल्हे-दुल्हनों का

विशाल मंडप, मद्धिम रोशनी के और तीन तरफ से खुला सजाया हुआ स्टेज तेज रोशनी में जगमगा रहा था। स्टेज के सामने स्त्री-पुरुष हजारों की तादाद में बैठे थे। स्टेज के एक ओर आमन्त्रित सज्जन और उनके ठीक सामने दूल्हे-दुल्हनों की कुर्सियाँ रखी गयी थीं।

हर जोड़े के लिए दो कुर्सियाँ। कुछ पर जोड़े बैठ चुके थे पर ज्यादा कुर्सियों पर सजे-सजाये ही दूल्हे अकेले तनावपूर्ण मुद्रा में बैठे थे, दुल्हन के इन्तजार में। वैसे पूरे स्त्री वर्ग को यह माना हुआ हक हासिल है कि वह सजने के लिए अच्छा-खासा समय लगायें। और उनके पति, मित्र या परिवार के लोग बेसब्री से उनका इन्तजार करें। सिनेमा का समय हो रहा है। पति महोदय गाड़ी, स्कूटर साफ कर या रिक्शे को रोककर आधे घंटे से खड़े हैं। पुकारते हैं, भई छः बजने में केवल दो मिनट बाकी हैं, जल्दी करो।

मेम साहब की आवाज आती है, आ रही हूँ डियर। बस एक मिनट। बिन्दी लगा रही हूँ। जबकि एक्चुअली मेम साहब आदमकद आईने के सामने पूरे तौर पर सज-धजकर खड़ी और घूम-घूमकर अपना अक्स देख रही हैं। साड़ी का पल्लू ठीक है या नहीं। सिलवटें ठीक हैं या नहीं। हर ऐंगल से वे कैसी दिखायी पड़ती हैं। जब ठीक छः बजकर पाँच मिनट हो जाते हैं तो मेम साहब ऊँची एड़ी की सैण्डल या चप्पल की हील छिप जाए इतना नीचे साड़ी को खींचते हुए प्रकट होती हैं। साहब कहते हैं कितनी देर कर

दी, पिक्चर शुरू हो गयी होगी। जवाब मिलता है, क्या करूँ दूध गर्म करने रखा था। आलमारी में उसे रखे बिना कैसे आती।

तो यहाँ तो उन्हें दुल्हन बनकर आना था। जिन्दगी की नयी दहलीज पर कदम रखने की घबराहट, कुछ शरमाना, कुछ सहेलियों की चुहल-बाजी। कुल मिलाकर देर से आने के सब कारण उनके पक्ष में थे।

मैंने मित्र से पूछा, दूल्हे अकेले और जल्दी आकर क्यों बैठे हैं। उसने बताया, कुल तेईस शादियाँ हैं। बढ़ भी सकती हैं। फर्स्ट कम फर्स्ट सर्व्ड— 'पहले आने वाला पहले पाएगा' के आधार पर यहाँ शादी होती है। इसलिए दूल्हों ने आकर पहले ही सीटों पर कब्जा कर लिया है। अब दुल्हन देर से आए तो भी कोई फर्क नहीं पड़ेगा। पर फर्क पड़ा, कोई एक घण्टे के बाद शादियाँ शुरू हुईं तो पहले नम्बर पर बैठे जनाब दूल्हे साहब अकेले मंच पर कैसे आते, बानो नहीं आयी थी। जनाब दिल मसोसकर बैठे रहे। दूसरे नम्बर वाले को बुलाया गया।

यों दूल्हों के शादी के रास्ते में और एक व्यवधान था मंत्री महोदय। मुख्य अतिथि महाराष्ट्र के समाज कल्याण मंत्री श्री निहाल अहमद कब पहुँचेंगे इसका कोई ठीक पता न था। साढ़े नौ तो बज गये। शादी कब होगी। पर गोंदिया के इस्माइलिया समाज के व्यवस्थापक होशियार हैं। पालिका अध्यक्ष और इस्माइलिया मजलिस के इस कार्यक्रम के अध्यक्ष श्री हरिहर भाई पटेल के आशीर्वाद से उन्होंने निकाह का कार्यक्रम शुरू कर दिया।

नामदार आगाखान साहब को धर्मगुरु मानने वाले इस्माइलिया खोजा समाज का गोंदिया एक प्रमुख केन्द्र है। किशोरावस्था में कोई तीस साल पहले यहाँ ऐसी मजलिस का आयोजन देखा था। इसलिए इस मजलिस के कार्यक्रम से मैं वाकिफ हूँ।

मूल रूप में गुजराती, इस्लाम धर्म को अंगीकार कर आगा खान साहब को धर्मगुरु मानने वाले इस्माइलिया लोगों को खोजा भी कहा जाता है। विविध उद्योग एवं व्यवसाय में रत ये लोग आम तौर पर सुखी और संपन्न हैं। घर में गुजराती बोलते और लिखते हैं। भारतीय समाज में अपेक्षाकृत संपन्न और आगे बढ़े हुए होने के बावजूद ये लोग समाज के क्षेत्रीय

सम्मेलन मजलिस के आयोजित सामूहिक विवाह समारोह में ही शादियाँ करते हैं। देश में और कितने केन्द्र हैं पता नहीं पर गोंदियाँ एक प्रमुख केन्द्र है। यहाँ मध्यप्रदेश, विदर्भ, आंध्रप्रदेश आदि दूरस्थ स्थानों के सैकड़ों खोजा सपरिवार आते हैं। तीन दिन के इस सम्लेलन में, जिनकी सगाइयाँ हो चुकी हैं उनकी शादियाँ हो जाती हैं। और कभी-कभी तो सगाई और शादी भी इसी मजलिस में हो जाती है।

शादी के लिए पचपन रुपये मुकर्रर फीस है जिसमें इकरारनामे का ग्यारह रुपये का स्टाम्प, दो फोटो, दो मालाएँ शामिल हैं। समाज की ओर से ही सबके ठहरने और भोजन की व्यवस्था की जाती है। लगभग दो-ढाई हजार स्त्री-पुरुष-बच्चे इकट्ठा होते हैं। फिजूलखर्ची रोकने के सिवाय समाज के दूरस्थ परिवारों को करीब लाने का यह सशक्त माध्यम है।

निकाह पढ़ाने वाले का मौलवी होना जरूरी नहीं है। जो अरबी में निकाह पढ़ सकता है वह दूसरे की शादी करवा सकता है। इस बार खास बात यह थी कि एक युवक जो कलामुल्लाह बहुत प्रभावशाली ढंग से पढ़ लेता था उसकी भी शादी इस समारोह में ही हो रही थी। कुछ निकाह कराने के बाद वह अपनी कुर्सी पर जा बैठा। अब उसका नम्बर आ रहा था। फिर शादी के लिए दुल्हन के साथ मंच पर आया। खुद के अकद के बाद वह पुनः दूसरों के निकाह की रस्म पूरी कराने लगा। सम्पन्न समाज में भी कोई मेहर (तलाक देने पर बीवी को दिया जाने वाला मुआवज़ा) दस हज़ार से ऊपर घोषित नहीं हो रहा था। जोड़े के सिवा उनके माता-पिता या पालक इकरारनामे पर दस्तखत कर रहे थे। 'निकाह कुबूल है' पूछने का सवाल ही नहीं था। इसके बाद संबंधित परिवार एक-दूसरे को मुबारक-बाद देते। दूल्हे-दुल्हन को सब शादियाँ खत्म होने के बाद ही मुबारकबाद दी जाए यह स्पष्ट हिदायत थी।

यह मजलिस इस्माइलिया समाज की उपलब्धियों की सक्रियता की नुमाइश होती है। इनका अपना सामाजिक बैंक है जो नीचे के लोगों को मदद देकर ऊपर उठाता है। समाज कल्याण विभाग है। समाज के लगभग हर तबके को छूने वाले संगठन हैं। अच्छे पढ़े-लिखे तरक्की पसन्द लोग हैं।

यों तो हर धर्म अपने आपमें, अपने मानने वालों को दकियानूस बनाने

के गुण रखता है। पर भारत में क्रिश्चियनों और पारसियों के बाद संभवतः इस्माइली खोजा ही कम दकियानूस हैं। इसकी वजह भी शायद यह है कि इनके धर्मगुरु आगाखान साहब विश्व के श्रेष्ठ रईसों में से एक हैं और बेहद तरक्की पसंद इन्सान हैं।

पूरे कार्यक्रम में एक बात जो खटक रही थी वह थी हर शादी के बाद आर्केस्ट्रा वालों का फिल्मी गाने गाना। इसकी जगह बिस्मिल्ला खान की शहनाई के रिकार्ड बजते या शादी मुबारक का कोई शेर पढ़ा जाता। शहनाई को भारत में हर धर्म के लोगों ने मंगलवाद्य माना है। सम्राट अशोक से लेकर वाजिद अलीशाह तक सबने।

आम मंत्रियों की तरह निहाल अहमद साहब भी देर से पहुँचे। पर उनकी तकरीर उम्मीद से ज्यादा अच्छी सिद्ध हुई। छः शादियाँ हो चुकी थीं। सातवीं उनकी मौजूदगी में हुई। हुकमरानों की हाजरी हर कहीं यों ही आतंकित करने वाली होती है। पर इसके आयोजकों की बेइंतहा शाइस्तगी या बिला वजह की गर्मजोशी के बगैर निकाह के लिए दूल्हे-दुल्हनों की मुकर्रर सीटों पर मंत्रीजी को बिठाया गया। दूल्हा-दुल्हन को बाजू में। मंत्री जी एक निकाह के बाद चले गए। लगा हवा का एक तेज झोंका आया और चला गया।

फिर सब नार्मल हो गया। अकद का सिलसिला जारी रहा। मुबारक। मुबारक।

12 नवम्बर '79

वामपंथी ताकत बढ़ेगा !

हावड़ा स्टेशन अभी भी कोई तीसेक किलोमीटर दूर था कि ट्रेन बिना कोई शोर किए रुक गई। लाइट, पंखे बन्द हो गए। कोई आधे घण्टे तक दूर-दूर तक फैले खेत, नारियल के पेड़ और लबरेज भरे छोटे पोखरों को निहारते बोर हो गया। पता चला कि पावर ब्रेक डाउन के कारण ट्रेन रुकी है। विद्युत से चलने वाले इंजिन का हार्न भी नहीं बज सकता था। कलकत्ता में विद्युत उत्पादन की कमी और जनजीवन पर पड़ने वाले उसके प्रभावों के बारे में पिछले छः-सात महीनों से पढ़ने को मिल रहा है उसके वास्तविक अनुभव की यह शुरुआत थी।

तीन-चार होटलों में टटोलने के बाद एक जगह पनाह मिली। कलकत्ते के आर्द्रता भरे गर्म वातावरण में इतनी देर में पसीने से भीग चुका था। कमरे में जाने पर मालूम हुआ कि लोड शेडिंग के कारण बिजली और पंखे सुबह नौ से बारह तक तीन घंटे बन्द रहते हैं।

किसी तरह तैयार होकर साढ़े दस बजे आफिस पहुँचा। दस मंज़िला पूरी इमारत एयरकंडीशंड है। कर्मचारियों की बड़ी भीड़ इमारत के हाते में और बाहर फुटपाथ पर खड़ी थी। मैं समझा शायद हड़ताल होगी। पूछने पर पता चला कि बिजली साढ़े बारह बजे आने पर ही दफ्तर चालू होंगे। लिफ्ट, लाइट, एयरकंडीशनर, एक्जास फैन सब बन्द।

पूजा की छुट्टियों के बाद आज दफ्तर खुल रहे थे। दुर्गापूजा बंगाल का सबसे बड़ा त्यौहार है। दस दिन की छुट्टी के बाद इकट्ठा होने पर

लोग एक-दूसरे से गले मिल रहे थे। तीन बार सीना मिलाते और फिर नमस्कार करते। कुछ मुसलमानों का ईद मिलना और कुछ हिंदू किस्म का। यह तीसरा संभवत: आजादी के पहले के पूर्व बंगाल में मुसलमान बाहुल्य के कारण विकसित हुआ होगा।

साढ़े बारह बजे बिजली आने पर दफ्तर की गतिविधि शुरू हुई। सीटों पर जमते-जमते एक बज गया। डेढ़ बजे लंच। यानी वास्तव में तो ढाई बजे ही काम शुरू हुआ जो साढ़े चार बजे से लगभग खत्म हो चला। क्योंकि दफ्तर नियमपूर्वक पाँच बजे बन्द होना ही चाहिए। सड़कों पर आतंकित करने वाला इन्सानी सैलाब। दम घोंटता धुआँ। गन्दी बस्तियाँ, कारों और बसों की चिल्लपों। प्रचुर सम्पन्नता, वैभव और घोर दारिद्र्य यह विरोधाभास समाजवादी मुल्कों को छोड़कर दुनिया के हर बड़े शहर में देखने को मिलता है। पर कलकत्ता एक अजीब शहर है—महानगर है। यहाँ सब कुछ विशिष्टता लिए हुए है।

इन्सान द्वारा खींचा जाने वाला साम्राज्यवाद का अवशेष रिक्शा। टन-टन घण्टी बजाती ट्रामें। बसों में भीड़ की वजह से बस के पीछे लटकते हुए लोग दुर्गापूजा और फुटबाल मैच के लिए पागलपन की हद तक पहुँचने वाले लोग। जुलूस, मोर्चे, हड़ताल, विशाल आम सभाओं का यह शहर। रवीन्द्र संगीत, असंख्य नाट्य संस्थाएँ और हर तरह की शुद्ध विशाल सांस्कृतिक सभाओं का यह शहर। रवीन्द्र एवं भारतीय सांस्कृतिक कार्यक्रमों में व्यस्त ये भद्रलोक। विश्व को रवीन्द्रनाथ टैगोर, सुभाषचन्द्र बोस, सत्यजीत रे और मदर टेरेसा जैसी अनोखी प्रतिभाएँ देने वाला यह महानगर अनेक विरोधाभासों को सँजोय हुए है।

हवा में राजनीति है। दिल्ली देश की राजधानी है। राजनीतिक गति-विधियों का समुद्र है। बम्बई देश की औद्योगिक व्यापारिक राजधानी है। उसकी गहमागहमी वहाँ बनी रहती है। हर आदमी भागता नजर आता है। पर इन दोनों शहरों के नागरिक कलकत्ते के मुकाबले राजनीतिक रूप से कम जागरूक हैं।

हावड़ा स्टेशन के भीतर से ही दीवारों पर लगे पोस्टर और चीखते हुए नारे—शहर की हर दीवार, हर उस जगह जहाँ कुछ लिखा जा सकता

है, आपकी निगाहें जहाँ भी ठहरें हर जगह अंकित हैं। जहाँ कहीं थोड़ी-सी जगह बाकी है वहाँ लिखा है स्पेस रिजर्व्ड फार सी० पी० एस० या फार सी० पी० आई० वगैरह। नियम किसने बनाया पता नहीं पर एक के नारे लिखने के आरक्षित स्थान पर दूसरा नहीं लिखेगा। डलहौजी से थोड़ी दूर जिस विशाल बीस मंजिला इमारत में जहाँ बिड़ला समूह का केन्द्रीय कार्यालय है वहाँ चारों ओर लिखा है—स्थान इंदिरा कांग्रेस के लिए आरक्षित। लोगों के अनुसार देश का सबसे बड़ा पूँजीपति किस ओर है स्पष्ट है।

किसी दफ्तर या होटल में सभी जगह प्रवेश-द्वार पर यूनियन की माँगों के पोस्टर और हड़ताल के नोटिस न लगे हों ऐसा हो ही नहीं सकता। पुरजोर नारे सुन्दर अक्षरों में लिखे हुए हैं। अपने यहाँ जैसे बचकाना ढंग से भोंड़े अक्षरों में लिखे जाते बेतुके नारे नहीं। अपने यहाँ तो स्कूल-कालेज के चालीस छात्रों की कक्षा के प्रतिनिधि का चुनाव लड़ने वाले लड़के आने-जाने वाली ट्रेनों पर भी लिखते हैं वोट फार...। खराब और बेतुके ढंग से लिखे नारों से न केवल नारों का वजन घटता है बल्कि शहर भी बदसूरत हो जाता है।

हमारे सामाजिक जीवन में असमानताओं की जो बदसूरती है, गंदगी है उसको यहाँ पर नारे उजागर करते हैं। स्वयं की बदसूरती का अहसास किसे गवारा होता है। ये नारे जो सड़ी-गली व्यवस्था और समाज को बदलने की, अन्याय को खत्म करने की बात करते हैं किसे पसन्द आयेंगे। इसलिए कुछ ऊँचे किस्म के लोग नाक-भौं सिकोड़ते हुए कहते हैं—यहाँ सब गन्दा दिखता है। पर मैं यहाँ की राजनीतिक जागरूकता का कायल हूँ।

उस दिन दोपहर चौरंगी के पास नाट्य मंच के कलाकारों का एक छोटा-सा जुलूस देखने को मिला। नारे और पोस्टर बंगला भाषा में थे। क्रांति के गीत रुक-रुककर गा रहे थे। पता चला कि ये कलाकार रंगमंच पर अश्लील वासनोत्तेजक दृश्यों के प्रदर्शन की बढ़ रही प्रवृत्ति का विरोध कर रहे थे। जिस नाटक का विरोध हो रहा था वह तो मैंने देखा नहीं है। पर कलाकारों की यह जारूकता भा गई। अश्लीलता और नग्नता के

विरोध में इस छोटे से प्रदर्शन को कलकत्ते के हर भाषा के अखबारों ने मुखपृष्ठ पर फोटो के साथ स्थान दिया था। बम्बई और दक्षिण भारत में बनने वाली सेक्स और हिंसा को उत्तेजित करने वाली, समाज को विकृत करने वाली फिल्मों के विरोध में प्रेक्षक या कलाकार कोई क्यों विरोध-प्रदर्शन नहीं करता। अश्लीलता, नग्नता, हिंसा का प्रदर्शन करने वाले निर्देशकों और कलाकारों की भीड़ बढ़ती जा रही है। इसके लिए क्या हिन्दी का प्रेक्षक या कलाकार जरा भी चिन्तित है?

वापस लौटने के लिए रिजर्वेशन कराने एसप्लेनेड स्थित बुकिंग आफिस पहुँचा। पूजा त्योहार के बाद लौटने वालों की खूब भीड़ थी। हर खिड़की पर लम्बी कतारें थीं। कुछ काम भी निपटाने थे। यहाँ तो घंटे-दो घंटे में भी कुछ हो पाएगा ऐसा नहीं लगता, यह सोचकर खड़ा रहा।

सामान्य कपड़े पहने एक लम्बा ऊँचा दुबला युवक करीब आया, कहाँ जाना है साहब? कौन-सी ट्रेन में? दस रुपए एक्स्ट्रा लगेगा।

कोई चारा नहीं था। मैंने फार्म भरकर उसे दे दिया। उसने एक लड़की को दिया और मुझसे बात करने लगा। बंगाली युवक हिन्दी से अच्छी अंग्रेजी बोलता था। मैं उसके व्यवसाय के अर्थशास्त्र को समझना चाहता था। इस दौरान एक पुलिस वाला आया उसको उसने दो रुपये दिये।

मैंने पूछा, उसको क्यों दिया? उसने हँसकर कहा, सबको शेयर देना पड़ता है। बातचीत को राजनीति की ओर मोड़ने के इरादे से मैंने कहा, बंगाल में कम्युनिस्ट सरकार के बावजूद भी भ्रष्टाचार तो उतना ही है। क्या परिवर्तन हुआ?

उसने विस्तार से समझाते हुए कहा, जो संक्षेप में यों है—एक स्टेट में हुकूमत होने से सब कैसे बन्द हो जाएगा? जब सारे देश में कम्युनिस्ट हुकूमत होगी तब ही बुनियादी परिवर्तन होंगे। वह समय भी अब ज्यादा दूर नहीं है। सी० पी० एम० और सब वामपंथी पार्टियों का मोर्चा बन रहा है। एकाध चुनाव के बाद देखियेगा क्या होता है। वामपंथी ताकत बढ़ेगा!

मैं उसकी राजनीतिक समझ से परेशान था। मैंने पूछा, तो फिर तुम ये

काम क्यों करते हो ? किस पार्टी में हो ?

उसने कहा, नौकरी मिलता नहीं क्या करेगा, हम सी० पी० एस० है। इतने में टिकट बनकर आ गई। उसने दस रुपये मुझसे लिये। हाथ मिलाकर थैंक्यू कहा और दूसरे कस्टमर की ओर बढ़ गया।

4 नवम्बर '79

टिकटार्थियों के तीर्थ में

कुतुब एक्सप्रेस प्लेटफार्म पर लगने में कोई एक घण्टा बाकी था। पंखे के नीचे एक खाली बेंच पर बैठकर पत्रिका पढ़ने लगा।

नई दिल्ली और पुरानी दिल्ली के स्टेशनों पर आने-जाने वाली पचासों गाड़ियों की वजह से वहाँ से अब कोई नई गाड़ी आरंभ करना संभव नहीं है इसलिए हजरत निजामुद्दीन स्टेशन को कुछ वर्षों से विकसित किया जा रहा है। वहाँ से छूटने वाली तीन-चार गाड़ियों में कुतुब और छत्तीसगढ़ ऐसी ही हैं जिनमें रिजर्वेशन आसानी से मिल जाता है। इसी चक्कर में यहाँ इतनी जल्दी आकर बैठा था। दिल्ली के अन्य दो बड़े स्टेशनों पर चौबीस घण्टे हजारों यात्रियों की भीड़ बनी रहती है। अन्तर्राष्ट्रीय यात्री भी वहीं दिखते हैं। मैले-कुचैले, ऊल-जुलूल किस्म के कपड़े पहने, पीठ पर डफल बैग लादे सैकड़ों हिप्पी भी मिलते हैं, शोर भी खूब होता है। उसके मुकाबले निजामुद्दीन स्टेशन एक कस्बे के स्टेशन जैसा है। ट्रेन के समय थोड़ी चहल-पहल फिर विरानगी। कुछ देर बाद दो नेतानुमा सज्जन मेरी ही बेंच पर आ बैठे। एक ने सफेद कुरता-पाजामा पहन रखा था, दूसरा खादी की पैंट और रॉ-सिल्क की बुशशर्ट में था। दिल्ली में ऐसे लोगों के आने-जाने का मौसम शुरू हो गया था। चुनाव सामने है। पार्टी टिकटों के उम्मीदवार दो-चार चमचों को साथ लिए हर ट्रेन में आते-जाते देखे जा सकते हैं। इस बार ऐसे लोगों के झुंड ज्यादा दिखे। पाँच-सात साल पहले जब केवल कांग्रेस सत्ता में रहती थी तब टिकटार्थियों की इतनी भीड़ नहीं

होती थी। ढाई साल पहले जनता के सत्ता में आने के बाद से स्थिति बदल गई है। चूँकि अब सत्ता की तीन सम्भावनाएँ हैं, लोकदल मोर्चा, जनता पार्टी और इन्दिरा कांग्रेस इसलिए ऐसी भीड़ भी तीन-चार गुना बढ़ गई है। टिकिट का अभिलाषी कौन है और चमचे कौन हैं यह पहचानना कोई मुश्किल काम नहीं है। ऐसे झुंड में जो व्यक्ति बड़ी विनम्रता से अन्य लोगों से होटल में पूछता है, क्यों भाई और कुछ लोगे? हर जगह बिल का पेमेंट कचोटते मन से पर हँसते मुँह से करता है। वह जानता है कि चुनाव तक उसे विनम्र रहना है। जीत गए तो पाँच साल तक विनम्रतापूर्वक यही लोग उसका बैग उठाने लपकेंगे। सामान्य रूप से मैं ऐसे लोगों पर गौर नहीं करता। पर उनकी बातचीत ने बरबस ध्यान आकृष्ट किया। कुरता वाला कह रहा था कि साला कोई समझने को ही तैयार नहीं है। नतीजा यही होगा कि बाँदा की सीट से साले कम्युनिस्ट ही जीतेंगे। बुशशर्ट वाले ने कहा, तुम्हारी पार्टी वाले नहीं समझते तो हमारे यहाँ ही कौन समझता है। उनको तो लगता है, इन्दिरा लहर चलेगी और तीन सीट जीतेगी।

हाँ भाई, हमारी पार्टी वालों का भी ऐसा ही ख्याल है, स्पष्ट बहुमत उन्हें ही मिलेगा।

इनको क्या है, दिल्ली में बैठना है। हवाई जहाजों में घूमना है। और अपने लिए सेफ सीट ढूँढ़ना है। फील्ड में जाएँ तो पता चले कि हवा क्या चल रही है।

बुशशर्ट वाले ने कहा—और जगह की छोड़ो, अपने को तो यह अखर रहा है कि बाँदा की सीट न जनता को मिलेगी न इन्दिरा कांग्रेस को। साले कम्युनिस्टों के हाथ जाएगी। मैंने अनजान बनते हुए कहा—क्यों, साहब, बाँदा तो यू० पी० में है। कुरते वाले ने मेरे अज्ञान पर जैसे तरस खाते हुए कहा—हाँ है। बाँदा उत्तरप्रदेश में ही है। और हम वहीं रहते हैं।

मैंने कहा—यू० पी० में कम्युनिस्ट जीतेंगे, ताज्जुब की बात है। कौन खड़ा हो रहा है वहाँ से? बुशशर्ट वाले ने कहा—रमेश सिन्हा या भीखालाल में से कोई भी एक भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का उम्मीदवार होगा।

तो मैंने कहा, क्या भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी इतनी ताकतवर है कि

वहाँ की लोकसभा सीट जीत जाए। उसने कहा—बिलकुल है, उनके प्रतिबद्ध मतदाता हैं। कमिटेड वोटर्स हैं। लोकदल मोर्चे के कारण उनकी संख्या बढ़ जायेगी।

कुरते वाले ने कहा—क्यों साहब, बतलाइये कम्युनिस्ट का जीतना कोई अच्छी बात है? इस अप्रत्याशित प्रश्न के लिए मैं कतई तैयार न था। मैंने सोचने की मुद्रा में थोड़ा रुकते हुए कहा—अच्छे बुरे को छोड़िये, पर आपकी बात काबिले गौर जरूर है। लेकिन आप करेंगे क्या?

कुरते वाले ने कहा—अरे साहब, इसीलिए तो आये थे। मैं जनता पार्टी में हूँ और ये भाई साहब इन्दिरा कांग्रेस में हैं। हम दोनों अपनी पार्टी के नेताओं को समझाने आए थे। कम से कम इस सीट पर त्रिकोणी संघर्ष टाला जाय; पर यहाँ कोई समझने को तैयार ही नहीं होता। देखेंगे स्थानीय स्तर पर क्या हो सकता है। मैंने पूछा—तो उम्मीदवार कौन हैं?

अब बुशर्ट वाला बोला—उम्मीदवार तो दोनों पार्टी के बाँदा में ही बैठे हैं। दोनों की एक राय है, इसलिए हम लोगों को भेजा था शीर्ष नेताओं को स्थिति से अवगत कराने। पर यहाँ तो माहौल ही कुछ अजीब सा है।

इस दौरान ट्रेन प्लेटफार्म पर आने की संभावना से चहल-पहल बढ़ गयी थी। कुरते वाले ने कहा—हम चलते हैं, दोनों का रिजर्वेशन तो करवा लें। मैंने बुशर्ट वाले से पूछा—आप क्या करते हैं, मेरा मतलब व्यवसाय?

उसने कहा—पत्रकार हूँ, साप्ताहिक निकालता हूँ पर कुछ दिनों से बन्द है···आर्थिक संकट···।

पूछने पर उसने नाम भी बताया, इतने में ट्रेन पाँच नम्बर प्लेटफार्म पर लगती दिखाई दी। मैं भी उठा। वह भी अपना ब्रीफकेस लेकर उठ खड़ा हुआ। उसने पूछा—और आप? अपने बारे में तो कुछ बताया ही नहीं।

मैंने अपना नाम बताया और कहा कि मैं भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य हूँ।

उसने थोड़ा सहमते, थोड़ा नाराज होते हुए कहा—अजीब आदमी हैं आप ! आपने पहले क्यों नहीं बताया यह सब ?

तो मैंने कहा, आपकी गालियाँ थोड़े ही सुनने को मिलतीं । चलिए ट्रेन लग गई । बैग उठाकर मैं तेज कदमों से चल पड़ा ।

10 अक्तूबर '79

अस्पताल का बच्चा

अन्तर्राष्ट्रीय बाल वर्ष के संदर्भ में, जी हाँ, अस्पताल में दूसरे बच्चों की तरह पैदा न होकर भी वह अस्पताल का बच्चा है।

नाम : पप्पू

आयु : लगभग डेढ़ वर्ष

रंग : गेहुँआ

पिता : पप्पा

माता : ममा

पता : जिला सदर अस्पताल राजनांदगाँव। डेढ़ साल पहले गंज के करीब संतोषी माता मन्दिर के पीछे कूड़े के ढेर पर चिथड़ों में लिपटा एक नवजात बालक एक मुसलमान बुढ़िया को मिला। उसने उसे अस्पताल पहुँचाना ही ठीक समझा। तब से यह बच्चा अस्पताल का हो गया।

अस्पताल की ऊपरी मंजिल में वह किलकारियाँ मारता, हँसता-खेलता मिलता है। हर पुरुष उसके लिए पप्पा है और हर महिला ममा। वह अस्पताल के भीड़ भरे वातावरण में रहने का इतना अभ्यस्त हो गया है कि उसके लिए कोई व्यक्ति अजनबी नहीं है। वह हँसता-खेलता हर एक के पास जाता है इस उम्मीद में कि कोई उसे गले लगायेगा। कुछ संकोच करते हैं। वह नहीं समझ पाता कि लोग ऐसा क्यों करते हैं।

मरीज व नर्सों के अनुसार वह बहुत कम सोता है। रात को भी पूरे वार्ड में ममा-ममा पुकारते घूमता रहता है। थकता है तो सो जाता है।

अस्पताल के स्टाफ ने उसे जिन्दा रखा है। खाना मिलता है, दूध मिलता है। सहानुभूति मिलती है। वह एक स्वस्थ बच्चा है। रोता बहुत

कम है। पर उसकी निगाह लगातार ढूंढ़ रही है उस माँ को जो उसे गले लगा ले। उसकी गोद में वह सो सके। जागने पर दुलारे-पुचकारे, थपकियाँ दे। वात्सल्य भरे अंकपाश की गर्मी में वह सो सके। बच्चों के उस वार्ड में वह देखता है, हर बच्चे के पास उसकी माँ है। वे उनके साथ सोती हैं। वह नहीं समझ पाता कि उसके साथ कोई क्यों नहीं सोता।

पप्पू को देखने के लिए आने वाले हर व्यक्ति के प्रति अस्पताल का स्टाफ और सिविल सर्जन श्री आर० एस० दीवान आशान्वित होते हैं और जानना चाहते हैं कि क्या आप बच्चे को गोद लेना चाहते हैं? वे इसलिए ऐसा नहीं पूछते कि इस बच्चे से वे पीछा छुड़ाना चाहते हैं। वे सब उसे सहानुभूति देते हैं पर वे जानते हैं कि पप्पू की वर्तमान आयु ही उसे गोद लेने के लिए उपयुक्त है। उसका स्मृति-पटल अभी कोरी स्लेट सा है। बहुत आसानी से वह किसी भी परिवार में घुल-मिल जायेगा, पालकों को भी कोई विशेष तकलीफ नहीं होगी क्योंकि वह चलता-फिरता है और अनाज खाता है। स्वस्थ है।

पता चला कि कुछ लोगों ने बच्चे को गोद लेने की इच्छा जाहिर की परन्तु डा० दीवान की राय में मध्यम वर्गीय परिवार ही इसे एडाप्ट करे तो अच्छा होगा। गरीब परिवार तो स्वयं आर्थिक समस्याओं से ग्रस्त हैं, अपने हर उत्साह के बावजूद बच्चे के साथ कितना न्याय कर पाएँगे—यह प्रश्न है। परिवार नियोजन के कारण पन्द्रह-बीस वर्षों से जिनके यहाँ बच्चे नहीं हैं, दम्पति प्रौढ़ हैं, या निःसन्तान हैं, वे इस बच्चे को गोद लें यह ज्यादा उपयुक्त होगा। मैंने उन्हें बताया कि दो बच्चों के वयस्क हो जाने के बाद से अठारह वर्ष के अन्तराल के बाद हमने डेढ़ साल की एक बच्ची को पूरे तौर पर अपना लिया है और अन्य तीन बच्चों की आधे तौर पर सेवा कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में बच्चे को माँ का जो प्यार चाहिए वह हम कहाँ तक दे सकेंगे—हमारे सामने यह प्रश्न है।

पप्पू उन हजारों बच्चों में से एक है जिन्हें हम अवैध कहते हैं। इस-लिए कि उनके बाप का पता नहीं चलता। 'अनाथ' इसलिए कि बाप के साथ माँ का भी कोई पता नहीं चलता।

वासना की तृप्ति के लिए ऐसे बच्चे पैदा कर छोड़ जाने वाले बाप

और माँ दोनों कायर हैं पर यह भी एक प्रश्न है कि हमारे समाज ने नार्वे-स्वीडन जैसे कुछ पाश्चात्य देशों की तरह कुँवारी माताओं को यदि अपराधिनी नहीं माना होता तो माताएँ ऐसी कायर न बनतीं। ऐसे एक-दो पात्रों को मैं जानता हूँ जो अवैध बच्चे को कूड़ेदान या अनाथाश्रम के दरवाजे पर न छोड़कर बुरी तरह से संघर्ष करते हुए जी रही हैं और माँ का प्यार बच्चे को बड़ी उम्मीद के साथ दे रही हैं। वे नहीं जानतीं कि बच्चे के पिता के नाम के कालम में क्या लिखवायेंगी। ऐसी लड़की के माँ-बाप ने घर से निकाल दिया। झोंपड़ी-पट्टी वाले जिस मोहल्ले में वह रहती है वहाँ भी लोग उसे चैन से नहीं जीने देते। ताने मारते हैं, लड़ते हैं, बच्चे को जलील करते हैं। बच्चे की ममता के कारण वह पात्र टूटा नहीं है; दूसरा कोई होता तो उसने आत्महत्या की होती और बच्चा सड़क पर भीख माँग रहा होता। अपराधियों की जमात में जुड़ गया होता।

बच्चों का क्या दोष है। क्या वे सजा इसलिए भुगतें कि जन्म लेने के लिए माँ-बाप चुनने का उनको हक नहीं होता?

हम धर्मप्राण हैं। मन्दिर-मस्जिद, धर्मशाला, अनाथालय बना सकते हैं। गाय, भैंस, कुत्ते, बिल्ली, तोता, मैना पाल सकते हैं। इन्सान है तो उसकी जात जानना चाहेंगे। अच्छी जाति का होगा तो स्वीकार्य है। चरित्र कैसा भी हो, संस्कार कैसे भी हों।

पप्पू अभी तो न हिन्दू है न मुसलमान और न क्रिश्चियन। उसकी जाति तो उसको जो गोद लेगा वही तय करेगा। परन्तु तब तक पप्पू केवल अस्पताल का बच्चा है।

किलकारियों के साथ अनेक सवाल उछालता हुआ। इन पंक्तियों के लेखक का एक अनुरोध है: लोग पप्पू को अजूबा समझकर देखने न जाएँ। सहानुभूति जताने की चेष्टा में हम अस्पताल के लोगों को कहीं तकलीफ में न डाल दें।

17 सितम्बर '79

क्या धार्मिक राष्ट्र संभव है ?

दीन एक अकीदा होता है । धर्म एक आस्था है । बदकिस्मती से हम अन्य प्रतीकों को धर्म मानते हैं । चूँकि क्रियाएँ अहम हो जाती हैं । आस्थाएँ पीछे ढकेल दी जाती हैं—तो हमको इन्सानियत सिखाने वाले दीन वहशी बना देते हैं ।

हम धर्म के जिस स्वरूप को लेकर बहस करते हैं, लड़ते हैं वह धर्म है ही नहीं । कोई धर्म बुरा नहीं होता या दूसरे मज़हब से अच्छा नहीं होता । सब धर्म बुनियादी तौर पर केवल एक ही बात सिखाते हैं इन्सानियत की, रहमदिल और नेकदिल इन्सान बनने की । यों अकीदा (आस्था) का कोई इजहार नहीं हो सकता । पर जब हम दिखावा करते हैं तब हमें दाढ़ी बढ़ाने की, मालाएँ पहनने की, खास किस्म के कपड़े पहनने की जरूरत पड़ती है । ये सब तमद्दुन हैं, रीति-रिवाज हैं । हर देश और जगह के तमद्दुन खास जगह की आबोहवा, भौगोलिक स्थितियाँ आसानी से मिलने वाली जिन्सों की बुनियाद पर बनते हैं । मिसाल के तौर पर रेगिस्तान अरब देश में जहाँ इस्लाम का जन्म हुआ और प्रचलित है और योरोप के उन देशों में जो बारहों महीने बारिश और बर्फ की वजह से नम रहते हैं इन्सान के अंतिम संस्कार की क्रिया तदफ़ीन (जमीन में दफन करना) इसलिए तय हुआ कि इन जगहों पर सूखी लकड़ी जुटाना आसान नहीं था। हिन्दुस्तान में साल में दस महीने सूखा मौसम और लकड़ियों के आसानी से मिलने की वजह से चिता पर जलाना तय पाया गया । अब इसमें कौन-सा

तरीका अच्छा और कौन-सा बुरा है इसपर बहस करना महज़ बेवकूफी है। इसी तरह से लुंगी, धोती या पैंट के मामले को भी आसानी से समझा जा सकता है। साथ ही यह भी कि मशीनी युग की जरूरत और मगरिब के प्रभाव ने हमें पैंट पहनना सिखा दिया।

अब इसमें बहस का मुद्दा क्या हो सकता है कि हम आप सब पैंट क्यों पहनते हैं, लुंगी या धोती क्यों नहीं ?

इसी तरह सिवा इसके कि कोई आदमी गंदा रहना पसन्द करता हो यह कोई मजहब नहीं कहता कि रोज नहीं नहाना चाहिए। सही यह है कि यदि रोज न भी नहाएँ तो कम से कम मन्दिर, मस्जिद या गिरजे में भगवान या खुदा की इबादत के लिए नहा-धोकर हल्के शरीर पाक दिल से जाना चाहिए।

मैं ऐसे हिन्दुओं को जानता हूँ जो कई पीर की मज़ार पर मन्नतें मानते हैं व चादर चढ़ाते हैं। दूसरी ओर ऐसे भी मुसलमान हैं जो लक्ष्मी का पूजन दीवाली में करते हैं।

पर मैं राजस्थान से आने वाले ऐसे दकियानूस हिन्दुओं को जानता हूँ जो यहाँ छत्तीसगढ़ में पानी इफरात मिलने पर भी काँसे की थाली में खाने के बाद उसे राख से पोतकर रख देते हैं और दोबारा खाने के वक्त कपड़े से पोंछकर पानी के कुछ छींटे डालकर साफ कर इस्तेमाल करते हैं। मेरे ऐसे भी मुसलमान दोस्त हैं जो हर मौसम में दिन में तीन बार नहाते हैं कुछ लोगों की तरह जुम्मे की राह नहीं देखते।

इन तमद्दुन (रीति-रिवाजों) का धर्म से क्या लेना-देना है। पर हम हैं कि मजहब के नाम पर ऐसे दस्तूरों की दुहाई देकर एक दूसरे के बीच फर्क करते हैं। दूसरे धर्म में आस्था रखने वाले को हमारा विरोधी मान-कर बहस करते हैं, लड़ते हैं और खून-खराबा करते हैं।

मजहब के नाम पर जो लोग आपस में रंजिश फैलाते हैं, खून-खराबा करवाते हैं उनका मकसद किसी मुहल्ले में बाजुओं, जुबान या पैसे की ताकत के भरोसे दादागिरी कर दूसरों पर रुतबा गाँठने वाले गुंडे से ज्यादा कुछ नहीं होता।

हिन्दुस्तान एक ऐसा देश है जिसमें यदि सत्तर फी सदी हिन्दू हैं तो

दस फी सदी मुसलमान और बाकी के क्रिश्चियन व अन्य धर्मों को मानने वाले लोग हैं । इन सब धर्मों ने मिलकर हमारे देश को एक ऐसी संस्कृति (तहज़ीब-तमद्दुन) दी है जो दुनिया में अपना सानी नहीं रखती । संस्कृति कोई जड़ वस्तु नहीं है, यह देश के साहित्य व विविध कलाओं के रूप में प्रगट होती है । हमारे देश का संगीत इन सब धार्मिक आस्थाओं की सबसे पुख्ता मिसाल है । क्या हमारे संगीत से बाबा हरिदास और तानसेन से लेकर आज भी जो कलाकार हैं उनमें हिन्दू-मुसलमान-क्रिश्चियन कहकर कोई फर्क किया जा सकता है ? कव्वाली रूमानी और भक्ति गीतों के आधार पर बनी एक पूर्णरूपेण भारतीय संगीत की उपज है जिसे हिन्दू-मुसलमान धर्म की सीमाओं को तोड़कर एक ताल पर एक साथ गाते हैं । हमारी राग-रागिनियों और नृत्यों में हिन्दू-मुसलमान कहकर क्या कोई फर्क किया जा सकता है ! हमारी तो छोड़िये, पाकिस्तान में भी कुछ लोगों की लाख कोशिशों के बावजूद राग-रागिनियों के नाम बदले नहीं जा सके—भैरवी भैरवी ही रही ।

दोनों देशों की सरहदों पर सख्त पहरे के बावजूद पाकिस्तान के लोगों को लता मंगेशकर और हिन्दुस्तान के लोगों को मेंहदी हसन सुनने से नहीं रोका जा सकता । हिन्दुस्तान तक सआदत हसन मंटो को और पाकिस्तान के पाठकों तक कृश्नचंदर को पहुँचने से कोई दीवार नहीं रोक सकी ।

देश को तकसीम करने की अंग्रेजों की कामयाब साजिश के बाद एक लकीर खींचकर बनायी गयी सरहद के दोनों ओर इंसान वहशी होकर एक दूसरे के खून का प्यासा हो गया तब पंजाबी की प्रसिद्ध कवयित्री अमृता प्रीतम ने लिखा : आज वारिस शाह से कहती हूँ अपनी कब्र से बोलो/ और इश्क की किताब का कोई, नया सफा खोलो/पंजाब की एक बेटी (हीर) रोई थी, तूने लंबी दास्तान लिखी/आज लाखों बेटियाँ रो रही हैं—वारिस शाह तुमसे कह रही हैं / ऐ दर्दमंदों के दोस्त अपने पंजाब को देखो : वन लाशों से अटे पड़े हैं, चिनाब लहू से भर गई ।

तब सरहद के उस ओर पाकिस्तान की मशहूर शायरा सहाबा किज़ल बाश की आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गयी । वहाँ के मशहूर गवैये नज़ाकत अली-सलामत अली ने अमृता से लंदन में अचानक मुलाकात

होने पर अमृता की उस कविता के सम्मान में बिना साज के रात भर गाया।

फिर्कावाराना ताकतों की हर कोशिश के बाद जो मुसलमान भाई बहके नहीं, जिन्होंने इस जमीं को ही अपना मादरे-वतन माना था, वे यहीं रहे और जो कचोटते मन से कुछ मजबूरियों, सरहद के दोनों ओर की गई वहशियाना हरकतों और ज्यादतियों की वजह से इधर से उधर गये या उस ओर से इस ओर आये उनके दिल में आज भी टीस उठती है। मैं नई पीढ़ी की बात नहीं कर रहा। मैं उन पुराने दरख्तों की बात कर रहा हूँ जिन्हें उनकी जमीन से उखाड़कर दूसरी जमीन पर लगाया गया जो आज भी जिन्दा हैं। जो सरहद के दोनों ओर बैठे आज भी हमारा सिंध, हमारा कराँची, हमारा अमृतसर या लखनऊ के दशहरी आम की बात करते हैं। यों वक्त अपने आप में एक मरहम है। घाव भरते जा रहे हैं। बत्तीस साल में एक नई पीढ़ी पैदा हुई है जिसे पुरानी तवारीख का पता नहीं या पूरे हिन्दुस्तान का नक्शा ही उसने नहीं देखा है। उनकी शायद ये सब बातें बेमानी लगें। पर कभी-कभी तवारीख को भी उलट कर देखना पड़ता है। जब हम मौजूदा हालात का कोई सिलसिला जानना चाहते हैं, जब हम दर-असल हिन्दू या मुसलमान नहीं फकत एक इन्सान को समझना चाहते हैं।

आज हमारे देश में एक अर्से से फिर्कावाराना ताकतों ने फिर से साजिशें शुरू कर दी हैं। वे फिर से हिन्दू-मुस्लिम दंगे करवाने में मशगूल हैं। मैं इसमें किसकी गलती ज्यादा और किसकी कम यह तौलने नहीं बैठा हूँ। न किसी ने वकालत की ब्रीफ मुझे दी है। और न मैं किसी खास वाकये की बिना पर कोई बात कह रहा। पर मुझे मालूम है, एक बात दोनों ओर ऐसे लोग हैं जो इन्सान इन्सान के बीच फर्क करते हैं, जहर के बीज बोते हैं, उनका ये आज का नहीं सदियों पुराना पेशा है। उनके स्वार्थों की सिंचाई के लिए इन्सान का खून पानी से ज्यादा सस्ता और अच्छा है। ये लोग धर्म की दुहाई देते हैं। धर्म पर आधारित राष्ट्र की बात करते हैं। दूसरे धर्म में आस्था रखने वालों को इस देश का नागरिक नहीं मानते या दूसरे और ऐसे भी लोग हैं जो इस्लामिक हकुमत के हिमायती हैं। यह सही है कि वे इस देश में नहीं पड़ोस में या बीच मशरीक कहे जाने वाले देशों में हैं पर

उनके कुछ प्रचारक यहाँ दबी जबान से उसकी हिमायत करते हैं।

ये सब दकियानूस लोग हैं। पीछे ढकेलने वाली ताकतें हैं। वे लोग साइंस और मशीन की तरक्की के साथ बदल रहे इन्सान से वाकिफ नहीं हैं।

क्या इस्लामिक हुकूमत और न्याय केवल चोरों के हाथ काटने या कोड़े मारने की सजा देने तक ही सीमित है। इस्लाम के विद्वान डॉ० रफीक ज़करिया ने कुछ अर्से पहले टाइम्स आफ इंडिया में 'इस्लामिक स्टेट क्या है?' इस पर पाँच लेख लिखे थे। हजरत उमर फारूक के न्याय का हवाला देते हुए उन्होंने एक किस्सा लिखा था जो इस्लाम की बुनियादी बात को उजागर करता है।

एक फटेहाल आदमी रोटियों की चोरी करते हुए पकड़ा गया। हजरत उमर फारूक के सामने पेश किया गया और वज़ीर ने हाथ काटने की सजा की सिफारिश की। उमर फारूक ने उस कमजोर आदमी को देखा और वे चौंके कि यह तो मरने के करीब है। उससे पूछा, रोटियों की चोरी क्यों की? उसका जवाब था, मैं तीन दिन से भूखा था। एक टुकड़ा भी नसीब नहीं हुआ।

उमर फारूक ने फैसला दिया—यदि हम इसे खाना नहीं दे सकते तो हमें (हुकूमत को) सजा देने का कोई हक नहीं है। पहले ऐसे लोगों को काम देकर रोजी का इन्तजाम करो ताकि उन्हें रोटी मिले। उसके बाद ही ऐसे गुनहगारों को कोई सजा दी जा सकती है।

ऐसे उसूलों पर चलने वाले कितने इस्लामिक राष्ट्र हैं? बन्दूक की नोक पर और फौज की ताकत के सहारे कोई भी आवाज कुचली जा सकती है। पर कोई धर्म संगीनों के सहारे नहीं मनवाया जा सकता।

वैज्ञानिक उपलब्धियों के साथ हमारे नजरिये और जरूरतें बदल गयी हैं। केवल एक बात सही रह गयी है जो हुकूमत इन्सान की बुनियादी जरूरतों को पूरी कर सके, सबको तरक्की का बराबर मौका दे, बाद में कानून और सजा की बात करे।

25 अगस्त '84

जे० पी०—लोग क्या सोचते हैं ?

होटल मैनेजर से पूछा—यहाँ से जे० पी० का मकान कितनी दूर है।

रिक्शे से जाइयेगा तो पचास पैसे लगेंगे। नहीं तो टहलते हुए निकल जाइये, सामने तिगड्डे पर पूछ लीजिएगा। आसानी से पहुँच जायेंगे।

तिगड्डे पर पहुँचकर एक रिक्शेवाले से पूछा—जे० पी० का मकान कहाँ है ? सीट पर बैठे इत्मीनान से बीड़ी जलाते हुए उसने कहा—नहीं मालूम। आगे बढ़कर एक पान वाले से पूछा। उसने कहा—जे० पी० पता नहीं साहब। पूरा नाम बताइये। मैंने कहा जयप्रकाश नारायण।

—ओ ! जय बाबू का घर पूछ रहे हैं। सीधे जाइये, अगले चौराहे से दायें मुड़ जाइयेगा। किसी से भी पूछ लेना करीब ही है।

अगला चौराहा एक उच्च मध्यवर्गीय मुहल्ले के बंगलों के बीच छोटे बाजार सा था। दो-तीन किराने, जलाऊ लकड़ी व कोयले की दूकानें, दो-तीन छोटे होटल, पान की दुकान। मुहल्ले के बीच ऐसे स्थान महत्वपूर्ण होते हैं। घरों के नौकर, मुहल्ले के लड़के इकट्ठा होकर बीड़ी-सिगरेट पीते, गप्पें लड़ाते मिल जाते हैं। मुहल्ले की आवश्यक जानकारी भी मिल जाती है।

चौराहे से दाहिनी ओर मुड़कर कोई पच्चीस-तीस कदम चलकर रुका तो बायीं ओर हाते की दीवार पर बोर्ड देखा—प्रभा-स्मृति। जे० पी० यहीं रहते थे।

हाते में सन्नाटा था। एक कतार में दो मंजिला मकान बने हुए हैं।

पहले मकान के बरामदे में रोशनी थी। कमरे बंद थे। आगे वाले मकान कम रोशनी के कारण बहुत अस्पष्ट दिखायी दे रहे थे। एक क्षण रुक कर सोच रहा था, किससे पूछूँ ! इतने में एक दरवाजा खुला। एक युवक लुंगी और बनियान पहने बाहर आया—पेट पर हाथ फेरता हुआ। शायद वह खाना खा चुका था। मैंने कहा—जय बाबू यहीं रहते थे ?

उसने कहा—हाँ ! किससे मिलना है ?

—ऐसे ही देखने चला आया था।

—अभी तो सब बंद है। देखना है तो कल सुबह नौ बजे आइयेगा। डायालिसिस की मशीन भी देखने को मिल जायेगी।

मैंने कहा—ठीक है, कल सुबह आऊँगा।

बाहर निकल आया। एक बार फिर गौर से बोर्ड पढ़े।

चौक की ओर कुछ। वहीं लोग थे। जे० पी० के मकान के ठीक सामने एक मकान छोड़कर एक धोबी का झोंपड़ा था। नीची छत। नंगे बल्ब की फीकी पीली रोशनी के नीचे तीन-चार बूढ़े जमीन पर बैठे थे। दो मेजों पर कपड़े इस्तिरी करने का इंतजाम था। कोने में अँगीठी पर तीन-चार इस्तिरियाँ रखी हुई थीं। बताया कि मध्यप्रदेश से आया हूँ और जे० पी० के बारे में कुछ जानना चाहता हूँ। एक बूढ़ा जो संभवतः घर का मालिक था, थोड़ा सा सकुचाया। एक बार खाँसकर बोला—हम क्या बतायेंगे। देखिये, लड़के को बुलाता हूँ। करीब की पान की दुकान से उसे बुला भेजा।

लड़का राजेन्द्र रंजक सामान्य कद का पैंट और बनियान पहने था। मैंने बातचीत शुरू की। जे० पी० के बारे में आप क्या सोचते हैं ?

वह बेलौस बोल पड़ा—क्या बतायें बाबूजी, जय बाबू बड़े आदमी थे। हम ठहरे छोटे आदमी। हँसते हुए मैंने कहा—बड़े थे इसलिए तो पूछने आया हूँ। आप जैसे लोगों के लिए उन्होंने क्या किया ?

—साहब, जे० पी० ने बहुत कुछ दिया और लिया भी।

मैंने कहा—यह लिया और दिया वाली बात समझ में नहीं आयी।

उसने मुस्कुरा कर कहा—दिया का मतलब है उन्होंने अपनी जमीन-जायदाद का बड़ा हिस्सा सामाजिक कार्यों के लिए दिया। और लिया का

माने है उन्हें बड़े लोगों से बहुत कुछ मिला, वह किसे मालूम है।

मैंने कहा—विदेशों में तो अतिथि के रूप में उन्हें जो कुछ मिला वह तो उनका निजी था। उसमें गलत क्या है।

—हुजूर ट्रकें भर-भर कर कंबल और कपड़े आते थे। मुहल्ले में किसी गरीब को आँसू पोंछने के लिए रूमाल भी नहीं मिला।

मैंने कहा—मुहल्ले में आप दो-तीन जनों के सिवा गरीब हैं कहाँ जिन्हें बाँटा जाता।

—जय बाबू के घर के पीछे वाले हिस्से में जाइये, वहाँ गरीब ही हैं। झोंपड़ों में रहते हैं। अँधेरा घुप्प है। सब इसी ओर आते हैं। वहाँ तो कोई जाकर देखे। हुजूर, उन्होंने दुनिया के लिए किया होगा—करीब के हमारे जैसे लोगों के लिए तो कुछ नहीं किया।···साहब, हम पिछड़ी जाति के हैं। एक पर्ची लिख देते तो कहीं भी नौकरी दिलवा सकते थे।

बूढ़े की ओर देखते हुए थोड़ा सा रुककर उसने कहा—देखिये साहब, पहले धोने के लिए सोड़ा एक रुपये में मिलता था, अब पाँच में भी नहीं मिलता। हम एक-दो बार उनके पी० ए० के पास गये। छोटे आदमी हैं, हमारा रोजगार ही उससे चलता है। सरकार से कहकर जरूरत पुरता सबका कोटा बनवा देते। न उन्होंने कुछ किया, न मिलने दिया।···सब बड़े आदमियों के लिए है। गरीबों की कोई नहीं सुनता।

ज्यादा सुनने की इच्छा नहीं थी। दो दुकान आगे बढ़ा। पान ठेले पर एक तिलकधारी सज्जन बैठे थे—अशरफीलाल शर्मा। उससे कहा—साहब, जय बाबू बहुत बड़े आदमी थे। उनके जाने से तो मुहल्ले में रोशनी ही खत्म हो गई।

उसे जमीन पर उतारने के लिए मैंने कहा—रोशनी तो आपके मुहल्ले में बहुत है। बड़े लोग भी बहुत हैं।

—हैं तो साहब, पर हमको उनका बढ़ा आसरा था। प्रभा माँजी जब रहती थीं कभी कोई काम होता बुला लेती थीं। शादी ब्याह के मौके पर दो-चार सौ की मदद हो जाती थी।

—अच्छा!

उसने जारी रखा—बड़ा आसरा था। प्रधान मन्त्री से लेकर अनेकों

मन्त्री और नेता आते रहते थे। पुलिस के पचासों जवानों का पहरा रहता था। गाड़ियों के ड्रायवर, पुलिस वाले सब हमारी दुकान में ही पान खाते थे। अब तो मुहल्ला ही सूना हो गया।

जे० पी० की मृत्यु के बाद शोक सभाएँ और श्रद्धा ही विवाद का विषय बन गये थे। आम आदमी को कोफ्त हो ऐसी कार्यवाहियाँ की गयी थीं। अपराध, भ्रष्टाचार, गरीबी सब जगह बरकरार थे। जगह-जगह नेताओं और उनके चमचों के झुंड राजनीतिक आपाधापी में मशगूल थे।

एक युवक ने कहा—जिन्हें सत्ता पाना था सबने जे० पी० का उपयोग किया। उनके लिए अब जे० पी० के नाम की भी कोई उपयोगिता नहीं है। उपयोगिता केवल उनके लिए है जिन्होंने जे० पी० अमृत कलश निधि के लिए बेहिसाब पैसा इकट्ठा किया है और कर रहे हैं।

2 दिसम्बर '79

यात्रा या यंत्रणा

मैंने वाश-बेसिन के नल की ओर हाथ बढ़ाया। वहाँ नल था ही नहीं। सोचा था, टायर कोच के दूसरे प्रसाधन में मुँह धो लूँ। वहाँ भी नल नहीं था। डिब्बे के चारों प्रसाधन और बाहर वाले वाश-बेसिन में नल थे ही नहीं। चारों में केवल पाखाने का नल अपनी जगह पर था। पर पानी बह चुका था। टंकियाँ खाली थीं। मैं परेशान था। इस ट्रेन में तो अभी चौबीस घंटे काटने हैं। बिना पानी के क्या होगा ?

दूसरे यात्रियों से पूछा तो पता चला कि कलकत्ते से ही डिब्बे की यह हालत है। चक्रधरपुर, बिलासपुर सब जगह शिकायतें करने पर भी कोई व्यवस्था नहीं हो सकी। नागपुर स्टेशन पर जब हमने शिकायत की तो रेलवे का स्टाफ आया जरूर पर उनके पास टोंटियाँ थीं ही नहीं। उन्होंने केवल इतना किया कि पानी बह न जाए, एक पाइप को सील कर दिया। नये टी० टी० ई० ने सहानुभूति अवश्य बतायी पर वह लाइलाज था। उसने कहा—साहब, आपके साउथ ईस्टर्न रेलवे की सभी गाड़ियों के रेक ऐसे ही हैं। पता नहीं उनके यहाँ चेकिंग और मेंटेनेंस का क्या तरीका है। कभी कोई कोच संपूर्ण नहीं होता।

मुझे स्वीकार करना पड़ा। बात सही है। कलकत्ता-बम्बई मेल की हालत तो कुछ ठीक रहती है। बाकी अन्य ट्रेन हावड़ा-अहमदाबाद, छत्तीसगढ़ एक्सप्रेस आदि जिनमें लोगों को तीस से पैंतालीस घंटे सफर करना पड़ता है उनमें ये परेशानियाँ आम बात हैं।

ऊपर वर्णित डिब्बे में जो यात्री कलकत्ते से अहमदाबाद जा रहे थे उनके कष्ट की तो केवल कल्पना ही की जा सकती है। देश की विभिन्न ट्रेनों में यात्रा करने के बाद इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि दक्षिण-पूर्व रेलवे देश की सबसे रद्दी रेल व्यवस्था है।

मई का महीना था। कलकत्ते जा रहा था। डिब्बे में पानी नहीं था। बिलासपुर तक तो किसी का ध्यान इस ओर गया ही नहीं कि डिब्बे में लाइट है या नहीं। बिलासपुर छोड़ने पर अँधेरा होने लगा। चालीस मिनट बाद चाँपा पहुँचने तक तो अँधेरा छा गया। तब डिब्बे में जो लोग सपरिवार थे, जिनके साथ बच्चे थे उनकी अकुलाहट बढ़ गयी। टी० टी० से भी कहने पर जब कोई व्यवस्था नहीं हुई तब चाँपा स्टेशन पर हम दो-तीन जनों ने तय कर अलार्म चेन खींच दी और कंडक्टर से कहा कि जब तक डिब्बे में लाइट और पानी की व्यवस्था नहीं होगी तब तक हम गाड़ी चलने नहीं देंगे।

कंडक्टर ने कहा कि ट्रेन में इलेक्ट्रिकल स्टाफ नहीं है। बिजली की व्यवस्था रायगढ़ में होगी, और पानी की झारसुगड़ा में। हमने विरोध किया मेल ट्रेन में इलेक्ट्रिकल स्टाफ न हो यह कैसे हो सकता है। हमारे दृढ़ रुख को देखकर उसने एक इलेक्ट्रिशियन को किसी डिब्बे से ढूँढ़ निकाला। दो मिनट में रोशनी की व्यवस्था ठीक हो गयी। और पानी की व्यवस्था झारसुगड़ा में ठीक हो पायी। जिसके लिए हमें स्वयं चेक करना पड़ा कि पानी ठीक से भरा जा रहा है या नहीं।

बिलासपुर में रेलवे का रनिंग स्टाफ बदलता है। रेल सेवा का प्रमुख सर्विस स्टेशन है। वहाँ ट्रेन की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए स्टाफ रहता है पर यात्री स्वयं इन बातों के लिए कहे। स्टाफ खुद ब खुद इन कमियों को पूरा कर देगा यह उम्मीद करना बेकार है। टी० टी० ई० जो यहाँ बदलते हैं उनको केवल इस बात की चिंता रहती है कि कितनी सीटें खाली हैं और कितनी आमदनी होगी।

हावड़ा जहाँ से बम्बई मेल और हावड़ा-अहमदाबाद जैसी अनेक ट्रेनें बनकर निकलती हैं वहाँ कोई ज्यादा अच्छी स्थिति नहीं होती। वहाँ तो केवल फौहारे से पानी डालकर डिब्बों को धो दिया जाता है। सीटें पोंछी

भी नहीं जातीं। वह काम यात्रियों का है। बैठना है तो आप सीट पोंछिये। सामान नीचे रखने के लिए पानी सूख जाने तक इन्तजार कीजिये। मुझे पूरा यकीन है कि वहाँ डिब्बों की कोई चेकिंग नहीं की जाती। एक बार कलकत्ते सुबह पहुँचकर शाम को ही पुन: मेल से वापस आना पड़ा। भाग्य से उसी कोच में जगह मिली जिसमें गया था। किसी किरायेदार को दिया हुआ मकान खाली होने के बाद जैसा दिया गया था वैसा ही वापस मिले। यानी खिड़की का कोई शीशा टूटा न हो, कोई नये खीले लगाए न गए हों, तब मकान मालिक को जो खुशी होती है ठीक वैसा ही सुख मुझे प्राप्त हुआ उस डिब्बे में प्रवेश कर। जैसा मैंने सुबह छोड़ा था डिब्बा वैसा ही था। दो वाश-बेसिन में नल नहीं। दो में फ्लश नहीं। लाइटों के ढक्कन वैसे ही खुले लटक रहे थे। वायरिंग का कवर लगा नहीं था इसलिए डिब्बे के एक सिरे से दूसरे तक पूरी वायरिंग खुली थी। आप वायर गिन सकते और पूरी विद्युत व्यवस्था की ट्रेनिंग यहीं ले सकते थे।

यात्रियों के आने-जाने की सुविधा के लिए डिब्बों को जोड़ने वाले वेस्टीब्यूल का ढेर सारा सामान रखकर मार्ग बन्द कर सकते हैं बशर्ते टी० टी० ई० से आपने हिसाब जमा लिया हो।

डिब्बों में सुलगती सिगड़ी या स्टोव पर चाय बनाकर बेचनेवाले और गोंदिया जैसे स्टेशन पर बीयर बेचनेवाले अनेक अनधिकृत वेंडर्स-भिखमंगे आदि की सुविधा का पूरा उपयोग आप नागपुर से हावड़ा के बीच कर सकते हैं। ट्रेन वही है—पर नागपुर से बम्बई के बीच में यह विशेष सुविधाएँ आपको नहीं मिलेंगी क्योंकि नागपुर के बाद सेन्ट्रल रेलवे हो जाती है।

देश की कई रेल सेवाएँ अपनी कुछ विशिष्टताओं के लिए प्रसिद्ध हैं। मसलन नादर्न रेलवे और वेस्टर्न रेलवे की खान-पान व्यवस्था, कैटरिंग सर्विस बढ़िया है। कुछ साफ-सफाई आदि के लिए। दक्षिण रेलवे और साउथ सेन्ट्रल डिब्बों के पूर्णत: रख-रखाव के लिए। पर हमारी दक्षिण-पूर्व रेलवे की कौन-सी व्यवस्था, बढ़िया की तो छोड़िए, ठीक है। यह सोच-कर भी नहीं बताया जा सकता। दक्षिण-पूर्व रेलवे की तथाकथित प्रतिष्ठित गाड़ी गीतांजलि सुपर फास्ट ट्रेन है। इसको तामिलनाडू या राजधानी के मुकाबले आप रख ही नहीं सकते। टिमटिमाती रोशनी, गायब टोंटियाँ और

घड़घड़ाते डिब्बों के सुख से आप वंचित नहीं होंग ।

खान-पान व्यवस्था का हाल यह है कि खाना तो रद्दी होगा ही पर पापड़ का छोटा टुकड़ा, दही, अचार, प्याज गायब हों तो आश्चर्य नहीं । देश के सबसे छोटे समोसे और गोंदिया स्टेशन पर मसाले की जगह हवा भरी कचौड़ियाँ प्रसिद्ध हैं । पान वाले आपको कत्था, चूना और कसम खाने के लिए सुपारी के दो टुकड़े देकर अहसान करते हैं । ठंडाई-इलायची की तो कल्पना ही मत कीजिए । लगता है, खान-पान व्यवस्था के नाम पर यात्रियों को लूटने के ठेके दे रखे हैं ।

एक सहयात्री व्यापारी से हावड़ा-अहमदाबाद ट्रेन में चर्चा कर रहा था, ट्रेन की दुर्व्यवस्था के सम्बन्ध में । उनका अपने वर्ग के अनुरूप मत था कि ऐसा सब यूनियनबाजी के कारण होता है ।

मैंने उनसे कहा—यहाँ तो कोई मजबूत लड़ाकू यूनियन है नहीं । रेल कर्मचारियों की अच्छी लड़ने वाली यूनियनें तो पश्चिम एवं उत्तर रेलवे की मानी जाती हैं । खूब लड़ती हैं यूनियनें वहाँ । पर व्यवस्था गड़बड़ नहीं होती । यदि एकाध अंग में दुर्व्यवस्था हो तो आप किसी वर्ग विशेष की यूनियन को दोष दे सकते हैं । यहाँ तो जब पूरी व्यवस्था ही गड़बड़ है, जाहिर है दोष व्यवस्थापकों का है ।

दक्षिण-पूर्व रेलवे के एक अधिकारी महोदय ने इस विषय पर पुराने तर्क दुहराए—इस रेल को यात्री गाड़ियों से कोई मुनाफा नहीं होता ।

मैंने कहा—अब तो वैसी स्थिति नहीं । अगर ऐसा है तो ट्रेनें क्यों बढ़ायी जा रही हैं । सभी ट्रेनें पूरी भरी रहती हैं । और यह तो कोई तर्क ही नहीं कि घाटा होता है इसलिए व्यवस्था गड़बड़ बनी रहेगी । रेल-सेवा यात्रियों की सुविधा के लिए होती है न कि यंत्रणा देने के लिए ।

वे निरुत्तर हो गए ।

हावड़ा-अहमदाबाद ट्रेन दक्षिण-पूर्व रेलवे की सबसे बड़ी रद्दी गाड़ी है । कलकत्ते से अहमदाबाद तक इसे पैंतालीस घंटे लगते हैं । इसमें कोई सुधार इसलिए नहीं हो सकता कि इसके अधिकांश यात्री गुजराती लोग हैं । उन को लड़ने की आदत ही नहीं है । इसलिए उन्हें इस यंत्रणा ट्रेन से मुक्ति नहीं मिल सकती ।

31 दिसंबर '79

मथुरा वृन्दावन

उधार माँगा भगवान

क्यों भाई ! भगवान कृष्ण जहाँ खेलते थे वो कुँजगलियाँ कहाँ हैं ? मुझे नहीं मालूम साहब ! उसने उस छात्र की तरह भय से दवे स्वर में कहा जिमसे किसी जिला शिक्षा अधिकारी ने पूछा था, शंकर जी का धनुष किसने तोड़ा ? मैं बेबाक हँस पड़ा । हँसने से एकबारगी शरीर गर्म हो गया । मुझे ठीक याद है—31 दिसम्बर 78 की वह रात ।

जयपुर जा रहा था । एक दिन का अतिरिक्त समय पास में था । क्या करूँ ? आगरा, जयपुर तो खूब देख चुका हूँ । कृष्ण की जन्मभूमि मथुरा-वृन्दावन आगरा से केवल साठ किलोमीटर है । क्यों न उसे ही धन्य किया जाय ?

वर्षान्त का ख्याल आया, जब मथुरा के रिटायरिंग रूम की इनचार्ज महिला ने शाम पाँच बजे मुझे अंग्रेजी में कहा—सर ! मैं कल छुट्टी पर हूँ । आपको कोई कष्ट हुआ हो तो क्षमा करेंगे । एंड विश यू वेरी हैप्पी न्यू ईयर ।

उसकी साड़ी-पिन प्लेट पर नाम अंकित था—श्रीमती एम सैम्युअल । वह क्रिश्चियन थी । मैंने कहा—नहीं मैडम, कोई तकलीफ नहीं । और आपको भी नया साल मुबारक !

उस दिन मथुरा में ठंड कुछ ऐसी थी कि लगता था—ठंड की सुइयाँ चुभोई जा रही हैं । पूरी बाँह का गर्म स्वेटर—सूती कमीज का भी सुख नहीं दे रहा था । कनटोपी-मफलर कुछ भी नहीं था । आदत के मुताबिक

अनवरत सिगरेट पीने से ही कुछ राहत महसूस हो रही थी। पहले वृन्दावन निपटा लूँ—कल मथुरा। लगभग सात बजे वृन्दावन पहुँचा और उसके बाद की यह कथा है।

मैंने रिक्शे वाले अवयस्क छोकरे से कहा—यार तुम यहीं रहते हो, कृष्ण की जन्मभूमि में। और यह पता नहीं कि कुंज गलियाँ कौन-सी हैं। कृष्ण जहाँ गोपियों और सखाओं के साथ क्रीड़ा करते थे।

उसने कहा—साहब, देखिए आपको रंगजी के मंदिर ले गया, वह बन्द हो गया था। बाजार के मंदिर में आया आपने दर्शन भी किए। इस बीच में जो गलियाँ पड़ती हैं वे ही होंगी आपकी कुंज गलियाँ।

सही था, उसने मुझे एक घंटे में काफी गलियों में घुमाया था—कुछ पैदल कुछ रिक्शे में। पर मैंने जो गलियाँ देखी थीं वे?

सँकरी, अँधेरी। धुएँ और कुहरे से आच्छादित। लगे हुए लट्टुओं का प्रकाश जमीन तक पहुँचता ही नहीं था। केवल बल्ब के अस्तित्व का आभास हो सकता था। दोनों ओर खुली नालियों की सड़ाँध ठंड की वजह से सड़क पर ही ठहरी हुई। अँधेरे में वीरान गलियों में चल रही संदेहास्पद गतिविधियाँ। खुसुर-फुसुर। मुझे लगा हो सकता है—कोई मुझ पर ही हमला कर दे। मैंने रिक्शे वाले से कहा—भाई, इस गली से जल्दी बाहर निकालो।

बस स्टैंड पर नौ बजे रिक्शे वाले का हिसाब चुकता किया तो मेरे मुँह से बेबस निकल गया—दोस्त! इन गलियों में तो गुण्डे ही पैदा हो सकते हैं, भगवान कैसे हो गए!

मैं आज तक समझ नहीं पाया। देश के किसी भी प्रसिद्ध देवस्थान में जाइये, वातावरण ऐसा क्यों नहीं होता कि श्रद्धा उत्पन्न हो। दुर्व्यवस्था, गंदगी, भीड़, मक्खियों की तरह भिनभिनाते भिखारी। पंडे-पुजारियों की लूट-खसोट और भ्रष्ट कार्यवाहियाँ। यदि आँख खुली हों तो श्रद्धा विरक्ति में या विद्रोह में बदल जाय। आभारी हैं हम अंधश्रद्धा के।

गुजरात में अंबाजी का प्रसिद्ध मंदिर है। गुजरात के हर जिले एवं राजस्थान के दक्षिणी जिलों से प्रतिदिन पचासों बसें आती हैं। पहले मंदिर में पचास लोगों के खड़े रहने की जगह नहीं थी। अब उसे तोड़कर विस्ता-

रित किया जा रहा है। कोई एक माह पहले सपरिवार वहाँ गया था। श्रीमती जी ने मन्नत जो मानी थी। इस कदर बदइंतजामी थी और धक्का-मुक्की हो रही थी कि मैं तो बिना दर्शन किए ही वापस चला आया।

अभी तक गया नहीं पर कहते हैं दक्षिण भारत के मंदिर अच्छे हैं। तिरुपति के मंदिर की बड़ी प्रसिद्धि है। पर पता चला वहाँ भगवान व्यंकटेश के अर्जेन्ट दर्शन की फीस पच्चीस रुपये है, पाँच रुपये भी है और मुफ्त में चाहें तो वहाँ लगे क्लोज़्ड सर्किट टेलीविजन पर दर्शन कर सकते हैं। गोया भगवान न हुए सिनेमा हो गया।

जिन मंदिरों में भगवान की पूजनीय मूर्तियाँ नहीं हैं—देलवाड़ा, खुजराहो, कोणार्क आदि—वहाँ चूँकि गोरखधन्धा नहीं चलता, बड़ा सुकून मिलता है।

और हमारा दृष्टिकोण कैसा है?

क्रिसमस और नए वर्ष के उपलक्ष्य में बड़े शहरों में, होटलों और क्लबों में विशेष सजावट के साथ विशेष कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं।

क्रिसमस की शाम इस बार एक मित्र के साथ नागपुर के प्रसिद्ध रेस्तराँ में बैठा था। पूरे हाल में विशेष सजावट थी। चमकदार पन्नियों में हैप्पी क्रिसमस और एंड न्यू ईयर दीवारों पर लिखा हुआ था। बैलून और फूल लटक रहे थे। आपस की बातचीत भी न सुनाई दे वैसा जोरदार पॉप म्युज़िक बज रहा था। खुशी शोर मचाकर ही मनाई जा सकती है—इस मान्यता के आधार पर पूरा वातावरण बनाया गया था। सजे-धजे लोगों की भीड़ थी। रिकार्ड बदला गया। शोर कुछ कम हुआ।

बाजू की टेबल पर तीन युवक बैठे थे। ज्यादा पी चुके थे, हल्के मूड में थे। अच्छे नाक-नक्श वाले युवक ने—बहुत स्मार्टली घूम-घूमकर आर्डर ले रहे स्टुअर्ड को बुलाकर कहा—आज तो रेस्तराँ में बड़ी जोरदार सजावट कर रखी है।

स्टुअड ने मुस्कराते हुए जवाब दिया—थैंक्यू सर! आज क्रिसमस है ना, आप सबके लिए विशेष सजावट की गई है।

युवक ने कहा—हाँ, वह तो दिख ही रहा है। चारों ओर तो आपने

झिलमिलाती पन्नियों में लिख रखा है—हैप्पी क्रिसमस। क्यों भई अभी कितने क्रिश्चियन हैं इस हॉल में?

स्टुअर्ट इस प्रश्न के लिए कतई तैयार नहीं था। जवाब क्या देता। पीछा छुड़ाने के लिए दूसरी टेबल की ओर लपकते हुए उसने कहा—एक्सक्यूज़ मी सर।

युवक ने मेरी ओर देखते हुए कहा—साले बेवकूफ बनाते हैं, हैप्पी क्रिसमस, हैप्पी न्यू ईयर! होली-दीवाली में ऐसा क्यों नहीं करते?

हम सब हँस पड़े।

मैंने कहा—यह तो उनका धंधा है, किस तरह माल बेचना है उनको मालूम है और होली-दीवाली में यहाँ आयेगा भी कौन।

उसने कहा—राइट यू आर। हमारा भगवान तो अपने जन्मदिन पर उपवास करवाता है। अधिक से अधिक शिवरात्रि को भाँग, गाँजा पी सकते हैं। जन्माष्टमी को जुआ खेल सकते हैं। अपना कोई भगवान ऐसा नहीं जो दारू पीने दे और खुशी मनाने दे।

मैंने कहा—बड़े शहरों में जिन लोगों के पास पैसा है, खुशियाँ मनाने के लिए उनको कोई बहाना चाहिए। क्रिश्चियन तो बेचारे चर्च में होंगे या घरों में क्रिसमस ट्री लगाकर सांता-क्लाउस का इंतजार कर रहे होंगे।

उसने कहा—देयर यू आर। यह खुशियाँ मनाने के लिए उधार माँगा हुआ भगवान है। दूसरों का। फिर सब हँस पड़े।

बेयरा द्वारा लाकर रखे अंतिम पेग को उठाते हुए, खड़े होकर उसने टोस्ट लेने की मुद्रा में अपने साथियों से कहा—कम ऑन। दिस वन फार क्राइस्ट्स सेक। उधार माँगे हुए भगवान के लिए। और वे एक घूंट में पी गये।

22 जनवरी '80

ये मुस्कुराने वाले लोग

हलो ! याग्निक साहब, बहुत दिनों के बाद आये ।

अभिवादन का उत्तर देने के पहले मेरे मुँह से निकला—माई गॉड ! आपको मेरा नाम भी याद है। आपकी याददाश्त बहुत अच्छी है ।

ये हलो करने वाला जबलपुर स्थित एक डिफेंस कारखाने का रिसेप्शनिस्ट था । कोई छः-सात महीने पहले इसी दफ्तर में मिला था। मुझे उस केरलवासी सज्जन का नाम याद नहीं पर उसे मेरा नाम-पता सब याद था। मैं हैरान था। स्वाभाविक है, दफ्तरों के व्यावसायिक कामों के बावजूद ऐसी आत्मीयता बताने वाले लोगों से कुछ अनौपचारिक बातें करने की इच्छा होती है। बातचीत के दौरान ही उसने तुरन्त प्रवेश-पत्र बना दिया और रजिस्टर दस्तखत लेने के लिए बढ़ा दिया ।

दफ्तर की ओर मैं बढ़ूँ तब ही उसने मुस्कुराते हुए कहा—इस बार साहब का दस्तखत लेने और वापसी का टाइम डलवाना मत भूलना। रिसेप्शनिस्ट या स्वागतकर्ता बड़े दफ्तरों का आवश्यक अंग होता है। आम लोग समझते हैं कि ये लोग बेकार बैठे रहते हैं, जिनसे मिलना है बीच में व्यवधान पैदा करते हैं और जबरन मुस्कुराते रहते हैं। यह बात सचिवालयों और सरकारी दफ्तरों के स्वागतकर्ताओं के बारे में महद् अंशों में सही है। पर वे तो कभी मुस्कुराते ही नहीं। रूखे-सूखे स्वभाव के और कभी-कभी तो बदतमीजी की हद तक जाने वाले लोग होते हैं। पर औद्योगिक और व्यावसायिक संस्थानों के रिसेप्शनिस्ट के बारे में यह

बात नहीं होती वे सही सलाह देते हैं, सहायता देते हैं और मुस्कुराते हैं।

कभी-कभी तो आगन्तुक सज्जन ऐसा बर्ताव करते हैं कि इस्पात भवन भिलाई में बैठे भेजे हुए स्वागत अधिकारी सिंह साहब भी लाचार होकर अपनी व्यावसायिक कला बताने को मजबूर हो जाते हैं। यों सिंह साहब बहुत ही विनम्र हैं। विनम्रता का वजन इसलिए बढ़ जाता है कि वे खालिस उर्दू का प्रयोग करते हैं। रोज आने वाले सैकड़ों लोगों में से पहचाने हुए चेहरे से वे तुरन्त मुस्कुराते हुए कहेंगे—क्या हुजूर, बहुत दिनों बाद तशरीफ लाये। हुकम कीजिये।

मैं आधे घंटे से बैठा इन्तजार कर रहा था—ऊपर से सूचना आने की। अधिकारियों से मिलने वालों की अच्छी खासी भीड़ थी। सिंह साहब मुस्कुराते हुए सबको निपटा रहे थे। बेशकीमती परन्तु भोंड़ी डिजाइन वाले कपड़े, चमचमाते जूते और ब्रीफकेस लिए एक युवक लगभग दूसरों को ढकेलते हुए काउन्टर पर पहुँचा और अंग्रेजी में बोला—मुझे बहुत जल्दी है। फलां साहब से कहिए मैं उनसे मिलना चाहता हूँ।

जाहिर है वह अपने को महत्वपूर्ण समझता और दूसरों को जबरन प्रभावित करना चाहता था। सिंह साहब अभ्यस्त हैं। उन्हें अधिकारी के बाबत जानकारी थी। इसलिए कहा—साहब अभी नहीं एक घंटे के बाद ही मिलेंगे। तब तक आप इन्तजार कीजिये।

उस युवक ने नाराजी के स्वर में कहा—आपको क्या मालूम, बिना पूछे ही कह दिया, नो''नो! आप उनसे कहिए मुझे जल्दी है, कलकत्ता जाना है। सिंह साहब ने डायल घुमाकर साहब से बात की—फलां साहब आये हैं, उन्हें बहुत जल्दी है, आपसे मिलना चाहते हैं।

फोन से जवाब मिला—मैंने पहले ही कहा था एक घंटा डिस्टर्ब मत कीजिये। मैं बिजी हूँ, उनसे कल आने को कहिये।

युवक पर जैसे घड़ों ठंडा पानी पड़ गया। बोले बिना वह कुछ देर खड़ा रहा। और कंधे उचकाता हुआ चला गया। सिंह साहब ने मुझसे कहा—लीजिये हो गई जल्दी। यदि थोड़ा धीरज रखते तो मैं साहब से आज ही मुलाकात करवा देता। हम तो यहाँ आपकी खिदमत के लिए बैठे हैं। पर न जाने ये क्या समझते हैं। और तुरन्त वे दूसरों के लिए एपाइंटमेंट्स

लेकर पास बनाने लगे। फिर वही मुस्कुराहट। इन्तजार के यही क्षण होते हैं जब आप स्वागतकर्ता से बात कर सकते हैं, मैत्री बढ़ा सकते हैं। कोरबा के एक दफ्तर में रिसेप्शनिस्ट महिला है। अच्छा पढ़ने वाली परिष्कृत रुचि की। पहली बार जब मिला और नाम रजिस्टर में लिखा, उन्होंने कहा—आपका नाम कहीं पढ़ा-सुना है। मैंने बताया—कुछ अखबारों में लिखता हूँ। वे लगातार उन अखबारों को पढ़ती हैं। वैसे उनके कार्य में भी शामिल है। जब भी मिलती हैं दो-तीन मिनट चर्चा करती हैं। प्रशंसा करती हैं। अपनी प्रशंसा किसे अच्छी नहीं लगती। शुष्क व्यावसायिक भागदौड़ में ऐसे लोगों से मिलकर सुकून मिलता है। दुर्भाग्य से मैं उन्हें कभी ज्यादा समय नहीं दे पाता।

यों मुस्कुराकर अभिवादन करना अनेक व्यवसायों से सम्बन्धित है। सेल्समैन, एयर होस्टेस आदि के लिए एक इंच की मुस्कान जरूरी होती है। पर रिसेप्शनिस्ट की मुस्कान आधे इंच की ही होती है। उसे आठ घंटे यही काम लगातार करना पड़ता हैं। ज्यादा बड़ी मुस्कुराहट उसे अमरीकी प्रेसीडेन्ट जिमी कार्टर बना देगी। कार्टर की मुस्कान एक जैसी रहती है। लगता है प्लास्टिक सर्जरी कर उसने मुस्कान बना ली है।

स्वागतकर्ता रिसेप्शनिस्ट तो मुस्कुराकर फूल बिखेरते हैं। वे अत्यन्त स्वाभाविक होते हैं। दिल्ली में एन० टी० पी० सी० के पुराने दफ्तर में प्रवेश-द्वार के पास ही स्वागत-कक्ष ऐसा बना था कि आगन्तुक की नजर ही नहीं पड़ती थी। मैं थोड़े संकोच के साथ दफ्तर की ओर बढ़ा। सोचा यहाँ ऐसी ही व्यवस्था होगी। एक मीठी जनानी आवाज सुनायी पड़ी—यस सर, वाट आई कैन डू फार यू ?

आवाज की दिशा में देखा तो समझ आया कि टेलीफोन-बोर्ड के पीछे एक खूबसूरत युवती बैठी है। वह रिसेप्शन एवं आपरेटर दोनों का काम कर रही थी। बोर्ड पर एक के बाद एक लाइटें जल-बुझ रहीं थीं। मैंने कहा—फलाँ साहब से मिलना है। रिसीवर पर नम्बर प्लीज कहते हुए उसने मुझसे कहा—प्लीज़ वेट। ही इज बिजी। और फिर—नम्बर प्लीज।

इसी दौरान इसी दफ्तर के किसी फोन से मजाक कर रहे व्यक्ति से कहा—पहले नम्बर बोलना सीख। प्लीज मत कह, नम्बर में कनफ्यूजन

होता है…मुस्कुराते हुए उसने फिर कहा—अरे नम्बर तो माँगेगा या नहीं। मुझसे ही बात करना है तो लंच में आ जाना। नम्बर प्लीज़। फिर उसी से बात जारी रखते हुए—आज शाम पिक्चर जा रही हूँ 'दि डे आफ जैकाल'। नम्बर प्लीज़…।

मैंने कुछ अनौपचारिक बनते हुए कहा—आपने 'दि डे आफ जैकाल पुस्तक' पढ़ी है।

—ओह, नो। आई एम डाइंग टु रीड दैट। नम्बर प्लीज़।

मैंने कहा—मैंने पढ़ी है। मेरे पास है। पिक्चर से तो बुक ज्यादा अच्छी है।

बेतकल्लुफी से उसने कहा—मुझे दोगे वह किताब?…नम्बर प्लीज़। इतने में सामने से मेरा फोन पर बुलावा आया। वापसी में शुक्रिया अदा करने उसके पास रुका। उसने पूछा—किताब कब देंगे?

मैंने कहा—सॉरी मैडम, बुक तो यहाँ नहीं है। घर पर है, दुबारा आऊँगा तो जरूर लाऊँगा।

उसने मुस्कुराते हुए कहा—प्लीज़ जरूर लाइयेगा।…नम्बर प्लीज़। फिर वही मुस्कुराहट।

20 नवम्बर '79

इलाहाबाद

शहादत धर्म के लिए

"और डुबाने का क्या लोगे ?" मैंने खीझ कर कहा ।

संगम पहुँचते ही नाव चलाने वाला एक लड़का पीछे पड़ गया था । दस-बारह साल का, काला, दुबला । पाजामा-कमीज पहने हुए । दस मिनट में वह पाँच-सात बार दुहरा चुका था—साहब, नाव में संगम की सैर कीजिये—फकत दो रुपये में । चाहें तो वहाँ स्नान भी कर लेना हुजूर ।

बित्ते-भर का लड़का नाव चलायेगा ! कुछ हो गया तो । मुझे तो तैरना भी नहीं आता । धर्म के लिए शहीद होने वालों की लिस्ट में नाम लिखवाने की कोई इच्छा नहीं है । खीझ कर डुबाने वाली बात इसलिये की थी कि वह पीछा छोड़ दे ।

उसने तुरन्त जवाब दिया—कैसी बात करते हैं हुजूर ! हमारी नाव में लोग यों डूबने लगे तो कर चुके हम धंधा । बात उसने कुछ इस ढंग से कही थी कि मुझे उसके पक्ष में ही फैसला करना पड़ा ।

माघ पुन्नी की अगली शाम थी । तेज ठंड । अँधेरा घिरता आ रहा था । थाली से भी बड़ा चाँद गंगा की लहरों पर टुकड़े-टुकड़े हो रहा था ।

यों नदी बिल्कुल शांत थी । फिर भी नदी में प्रवाह होता है । स्वाभाविक रूप से नाव हिलती-डुलती रहती है । ऐसी भी बात नहीं कि पहली बार नाव में बैठा था । पर कुछ ज्यादा हलचल होती और मैं सशंक पलट कर पीछे देखता । लड़का मजे में पतवार चला रहा था ।

मन के भय को हटाने के लिए मैं लड़के से बातचीत करता । पढ़ते हो

या नहीं ? कितने-भाई बहन हैं ? कितना पैसा कमा लेते हो ? वगैरह ।

बहुत छोटे-छोटे वाक्यों में उत्तर देकर वह बात खत्म कर देता। गंगा-जमुना के संगम-स्थल पर पहुँच गये हैं। इसका बोध कराने के लिए उसने कहा—साहब, देखिये ये सुफेद पानी—वह काला। गंगा और यमुना।

कुछ क्षण ब द उसने नाव वापस घुमानी शुरू की। मैंने पूछा—क्यों ? इतनी जल्दी, अभी तो दस मिनट भी नहीं हुए।

उसने कहा—हुजूर, लगता है आपको मजा नहीं आ रहा। कोई साथी होता तो आपको मजा आता। मेरी मन:स्थिति को उसने पढ़ लिया था। शालीनतावश उसने दूसरे ढंग से कहा था। कितना सही है—साथ में कोई हो तो भय नहीं होता। दुश्वार मंजिल भी सर हो जाती है। हर मुश्किल आसान हो जाती है।

नाव के वापस होने के साथ ही दिशा और दृश्य पूरा बदल चुका था। किनारे की रंग-बिरंगी रोशनी लहरों पर टूट कर अनेक रंग बिखेर रही थी। किनारे पर लगाये गये पटियों पर बैठी औरतें पत्ते के दोनों में सैकड़ों दीप प्रवाहित कर रही थीं। झिलमिलाते हुए प्रकाश-पुंज—लहरों पर कुछ दूर तक थिरकते हुए तैरते और समूह से अलग होने पर लुप्त हो जाते। किनारे के करीब आने का अहसास धीरे-धीरे बढ़ रहे शोरगुल और सुनाई पड़ती आवाजों से होता था। तेज ठंडी हवा के एक झोंके से सिहर उठा। एकाएक उस लड़के से पूछा—क्यों, तुम्हें ठंड नहीं लगती।

उसने हँसते हुए कहा—ठंड ? कैसे लगेगी हुजूर। मिहनत जो करते हैं। ठंड तो बड़े लोगों को लगती है।

मैं बड़ा आदमी नहीं। पर छोटे में शामिल होने के लिए अपना ऊलन सूट और स्वेटर उतार फेंकने की भी हिम्मत नहीं। मध्यम वर्ग का जो हूँ।

सैकड़ों नावों के बीच जगह बनाते हुए आहिस्ते से नाव किनारे लगाते हुए उसने पूछा—हुजूर, कल भी आयेंगे क्या ?

मैंने पूछा—क्यों ? उसने सिर खुजलाते हुए कहा—धंधे का सवाल है साहब। कल-परसों दो रोज खूब भीड़ होगी। पैसा ज्यादा लगेगा। मैंने हँसते हुए कहा—तब तो मैं उसके बाद ही कभी आऊँगा !

—मेरा ख्याल रखना साहब। अब आपको खूब दूर तक घुमाऊँगा।

सोचा, तुम्हारा नाम कैसे भूलूँगा ? रेत पर बनायी गयी चौड़ी सड़क पर लोहे की मोटी चादरें दो कतारों में पूरी दूरी तक बिछा दी गयी थीं ताकि गाड़ियाँ रेत और कीचड़ में न फँसें। पूरी सड़क पर पानी का छिड़काव जारी था ताकि सुबह धूल न उड़े। छिड़के हुए पानी की ही वजह से ठंड और ज्यादा महसूस होने लगी। सैकड़ों लाउड स्पीकरों से तरह-तरह की आवाज आ रही थी। भजन-कीर्तन की, प्रवचनों की, लखपति बनने वाले लाटरी वालों की, हर माल सस्ते में बेचने वालों की, होटलों में उपलब्ध गर्म पूड़ी-साग, चाय और कचौड़ी की।

पर उस सबसे ऊपर तैरती एक आवाज हर चौराहे पर लगे पोंगे पर आ रही थी। भूले-भटके शिविर में एक डेढ़ साल की बच्ची काला फ्राक पहने हाथ में बताशा लिए हुए रो रही है। कृपया उसके माता-पिता आकर ले जायँ। लखनऊ के धर्मेन्द्र श्रीवास्तव भूले-भटके शिविर में अपने साथियों का इन्तजार कर रहे हैं। और ऐसी अनेक घोषणाएँ भूले-भटके लोगों के लिए।

बनाये गये मार्ग के दोनों ओर धजा-पताकाओं से सुसज्जित सैकड़ों पंडों के छोटे स्टाल लगे हुए थे। उसके बाद पूरे नाम-पते के साथ लगे बैनर और बोर्ड वाले बाबा और महाराजों के शिविर थे। पंडों के स्टाल सूने थे। उनके ग्राहक सुबह आयेंगे। महाराज और बाबा लोगों ने क्षमतानुसार भक्तों की भीड़ अभी से जुटा रखी थी। भजन प्रवचन चल रहे थे।

मार्ग के दूसरी ओर रामलीला वाले होटल व दवाओं, गंडे-तावीज, धागों और मालाओं की दूकानें थीं। बीच-बीच में बीड़ी वाले, पान वाले सब कुछ तो था। खोयी हुई जवानी वापस दिलाने वालों, बिजली से कमजोरी का इलाज करने वालों, गंजे सिर में बाल उगाने वालों से लेकर सीधा मोक्ष दिलवाने वाले सब कलाकर मौजूद थे। इलाहाबाद में संगम पर हर माघ पूर्णिमा को पुण्य स्नान करने वाले लाखों की संख्या में जुटते हैं, तो कुम्भ में क्या होता होगा! केवल दस-बीस गुने की कल्पना ही की जा सकती है। कोई बीस मिनट बाद तट पार कर सड़क पर पहुँचा तब भी अंतिम छोर पर लगे ध्वनि-विस्तारक से घोषणा सुनाई पड़ रही थी—भूले-भटके शिविर में डेढ़ साल की बच्ची…धर्मेन्द्र श्रीवास्तव…। आज यह हाल है तो

कल यहाँ क्या होगा ?

मैं तो इतने से ही आतंकित था। दूसरे दिन क्या जाता। कानपुर चला गया। एक रोज बाद वापस इलाहाबाद लौटा।

मसूरी और नैनीताल में दो रोज से बर्फ गिर रही थी। उत्तर प्रदेश में जबर्दस्त शीत लहर चल रही थी। कंबल लपेट, कनटोपा पहने गर्म चाय का कप हाथ में लिये अखबार पढ़ रहा था। सुर्खियों में छपा था— कोई दो लाख लोगों ने माघ पूर्णिमा को प्रातः गंगास्नान किया। वगैरह।

बॉक्स में एक न्यूज़ थी—गंगास्नान कर बाहर आने पर ठंड के कारण तीन लोगों की मृत्यु हो गयी। बेचारे !

21 फरवरी '80

वाइफ नहीं—पत्नी या बेगम

मार्ग निर्माणाधीन है। वाहन अत्यंत मंद गति से चलाइये।

मेरे फादर की ओल्ड एज में डैथ हो गई। फिर भी मदर उनकी मेमोरी में रोती रहती हैं। पूरी फैमली डिस्टर्ब हो जाती है।

पहला वाक्य राजस्थान की एक सड़क पर जहाँ मरम्मत हो रही थी जगह-जगह पढ़ने को मिला। दूसरा वाक्य ट्रेन में दो अधेड़ उम्र के क्लर्क-नुमा सज्जनों की बातचीत के दौरान सुनाई पड़ा।

सड़क पर जहाँ सैकड़ों वाहन तेज गति से चलते हों हिदायतें संक्षिप्त होनी चाहिये ताकि चालक एक निगाह में पढ़ सके। पढ़ने के लिए कोई रुकता नहीं। पढ़ कर रुक सकता है।

सड़कों पर जहाँ गाँव की प्रगति सबकी प्रगति है, हम सुनहरे कल की ओर बढ़ रहे हैं, कश्मीर से कन्याकुमारी तक भारत एक है जैसे बेतुके नारे पढ़ने को मिलते हों कोई वाहन चालक इसी धोखे में सड़क मरम्मत संबंधी लंबी सूचना न पढ़े और गाड़ी गड्ढे में उतर जाय तो हालत क्या होगी, सोच सकते हैं। यह तो हुई तथ्य संबंधी बात पर इस वाक्य के पीछे शुद्ध हिन्दी का दुराग्रह साफ जाहिर है। भाषा स्पष्ट रूप से जनसंघी एवं संकीर्ण सांप्रदायिक विचारधारा की परिचायक बन गयी है। बहरहाल पहले वाक्य को हिन्दी में यों लिखा जा सकता था—आहिस्ता चलिये, मरम्मत जारी है।

दरअसल होता यह है कि हम जब दुराग्रह पर आमादा होते हैं, या

हमारी समझ किसी मुद्दे पर साफ नहीं होती तब शाब्दिक लफ्फाजी ही हमारा एकमात्र सहारा होती है। किसी जनसंघी नेता या मंचीय कवि का जिनकी समझ आम तौर पर साफ नहीं होती, ओजस्वी भाषण सुनिये। भारी-भरकम, लच्छेदार शब्दों का जाल रच कर ही श्रोताओं से वाहवाही ले लेते हैं। श्रोता घंटों सुनने के बाद भी यह समझ नहीं पाता कि वक्ता ने आखिर कहा क्या ?

यह बात भाषण या लेखन तक सीमित होती तब भी ठीक था। पर मेरे एक परिचित प्रोफेसर मित्र शुद्ध हिन्दी के विकट दुराग्रही हैं। उनसे बातचीत करने में मुझे बड़ी कोफ्त होती है। वे चबा-चबाकर, शुद्ध हिन्दी के शब्द ढूँढ़ते हुए, वाक्य गढ़ते हुए बोलते हैं। जैसे—इस वस्तु का मूल्य क्या होगा।··· जाहिर है उनकी हर बात अस्वाभाविक लगती है। ऐसे में उनसे क्या बात करें···और मजे की बात है कि वे अपना परिचय अध्यापक, प्राध्यापक आदि नहीं प्रोफेसर कह कर देते हैं। ऊपर का दूसरा वाक्य हमारी इस कमजोर समझ का प्रतीक है कि इंग्लिश शब्दों के इस्तेमाल से सुनने वाला प्रभावित होता है। हमारे जेहन में अंग्रेजों की भाषा इंग्लिश सुसंस्कृत होने की परिचायक है। इसी भ्रम में हम न ठीक से अंग्रेजी बोलते हैं न हिन्दी।

यदि उन सज्जन ने यों कहा होता—पिता जी वृद्धावस्था में (या बुढ़ापे में) गुजर गये, फिर भी माँ हमेशा उन्हें याद कर रोती रहती हैं और पूरा परिवार उदास हो जाता है। तो क्या नुकसान होता ?

अक्सर देखा होगा कि कुछ लोग गुस्सा प्रकट करने के लिए अंग्रेजी का उपयोग करते हैं। हमारे एक मित्र हैं, कभी इंग्लिश पढ़ी नहीं। स्कूल में जो कुछ पढ़ाया गया उसे छोड़ कर। अच्छे किस्सागो हैं। पाँच-सात मिनट तक किसी घटना या समस्या पर बढ़िया ढंग से बोलने के बाद वे बातचीत के दौरान उठाये गये मुद्दों को जोर से अंग्रेजी में दुहराते हैं। मसलन—बट व्हाय ? व्हाय इट शुड बी लाइक दैट ?

शुद्ध हिन्दी के दुराग्रह और सुसंस्कृत बताने के लिए अंग्रेजी का आग्रह दोनों के बीच हम ऐसे फँसे हैं कि बस ! हम जो बोलते हैं न, वह अंग्रेजी है न शुद्ध संस्कृतमय हिन्दी। दिशा की अस्पष्टता का एक बढ़िया उदाहरण

है—भारतीय स्टेट बैंक। दरअसल स्टेट बैंक आफ इंडिया का हिन्दी में अनुवाद करने की यह एक भोंड़ी कोशिश है। नामों का अनुवाद नहीं किया जा सकता। पर शासकीय आदेश है हिन्दी को बढ़ावा देने का। चतुर अधिकारी अतिरिक्त उत्साह से आदेश लागू करने का काम करते हैं।

इसी बीमारी ने रेलवे को मजबूर किया कि वह शौचालय को प्रसाधन लिखे। प्रसाधन दरअसल कॉस्मेटिक्स का पर्यायवाची है। पाउडर, साबुन, लिपिस्टिक आदि सौंदर्य-प्रसाधन हैं। अंग्रेजी में टायलेट का अर्थ कॉस्मेटिक्स नहीं होता। पर हमने कर लिया। चाहे अंग्रेजी सिर धुने।

उस दिन शंकरगढ़ स्टेशन पर एक ट्रेन पर बोर्ड पढ़ा—टिचर स्पेशल। वाराणसी-बंबई-वाराणसी। संदेह टिचर या टिंचर जो बनारस से बंबई विशेष गाड़ी में जा रहा है। यात्री गाड़ी थी। थोड़ा गौर से देखा। यात्रियों को देखकर समझ आ गया कि स्वयं को जबरन मध्यम वर्गीय मानने वाले गरीब शिक्षक परिवार के लोग थे और गाड़ी टीचर्स स्पेशल थी।

यह ठीक उसी तरह है कि जब हाजत लगती है, टट्टी जाना हो तो हम कहते हैं लैट्रीन जाना है (कुछ लेटरिंग कहते हैं)। शायद पाखाना या टट्टी कहने में गंदा मालूम होता होगा। लेट्रीन अंग्रेजों की याने पढ़े-लिखे लोगों की भाषा का शब्द है।

सामान्य रूप से पढ़े-लिखे (और अनपढ़ भी) पत्नी को वाइफ कहना पसंद करते हैं। वाइफ नाराज है। वाइफ कल मायके जा रही है। परिवार के लिए फैमिली से लेकर हर रिश्तेदार के लिए अंग्रेजी शब्द चाहिये। क्यों ? स्वीकार करता हूँ कि मैं भी इस दोष से मुक्त नही हूँ।

एक बार उत्तर प्रदेश के एक परिचित मुसलमान अधिकारी के यहाँ गया। अच्छे पढ़े-लिखे, सुसंस्कृत हैं। दफ्तर में शुद्ध हिन्दी में जब डिक्टेशन देते हैं—आप सुनते जाइये। घर में उर्दू को तवज्जह देते हैं।

हमारी भाषा की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा—कभी सोचता हूँ कि हमारी बोलचाल की भाषा कौनसी है। उर्दू-हिन्दी मिली भाषा जिसे अब हिन्दुस्तानी कहा जाता है सबको सीधे समझ आ जाती थी। पर हिन्दी को शुद्ध बनाने के लिए संस्कृत पर इतना जोर दिया गया कि भाषा अस्वाभाविक होती जा रही है। जाहिर है, हम क्या चाहते हैं, अब तक तय नहीं

कर पाये हैं।

हिन्दी में यदि उर्दू के शब्द हों तो क्या नुकसान होगा। उर्दू पसंद तो है—पर केवल मुशायरे, शेरो-शायरी और कव्वाली के लिए। दरअसल हिन्दी को संस्कृतनिष्ठ बनाने वालों के मन में संस्कृत के लिए उतनी चाह नहीं जितनी उर्दू के लिए छिपी हुई घृणा है। और यह महज सांप्रदायिक संकीर्णता के कारण है। अंग्रेजी के मामले में ऐसा नहीं है।

शायद यही वजह है कि हम पत्नी को वाइफ कह कर झूठा गौरव महसूस करते हैं। आप वाइफ को पत्नी, श्रीमतीजी, बीवी या बेगम कह कर देखिये—कितना अच्छा मालूम होता है। धर्मपत्नी भी गलत है। पत्नी पत्नी होती है—धर्म की क्या जरूरत पड़ गई बीच में।

मैंने कहा—वाइफ। वाइफ से पत्नी या बेगम ज्यादा अच्छा और वजनदार लगता है।

बेगम !

2 जून '80

चोरी थाली से भोजन की

रूना लैला

लता मंगेशकर

आशा भोंसले

और उनके साथ फिल्मी दुनिया के अनेक जगमगाते सितारे। दिलीप कुमार, संजीव कुमार वगैरह। ऐसा बढ़िया कार्यक्रम लगातार तीन घंटे दिखाया जाय तो ?

जानता हूँ मेरा लड़का और लड़की, और अनेक लोगों को, जो ऐसे कार्यक्रमों को सुनने के लिए दो-चार रात आसानी से गुजार सकते हैं। सैकड़ों रुपया खर्च करने तैयार हो जायेंगे। यों एकाध रात तो मैं भी जाग सकता हूँ बशर्ते ज्यादा पैसा न खर्च करना पड़े।

पर यह कार्यक्रम तो हम पर आश्चर्यजनक सुख की तरह थोपा गया था। पूरी रात जागने के बाद सुबह साढ़े आठ बजे दिखाया जा रहा था। रात दस बजे दिल्ली के लिए नागपुर आने वाली तमिलनाडू सुपरफास्ट एक्सप्रेस, बल्लारशाह के पास आखिरी तीन डिब्बे पटरी से नीचे उतर जाने के कारण पहले चार घंटे लेट घोषित हुई। उसके बाद पूछने पर पता चला, छः घंटे लेट है। और नागपुर स्टेशन पर जब सुबह पौने छः बजे पहुँची तब तक तो आधे यात्री इरादा बदल कर घर जा चुके थे। कुछ मेरी तरह मजबूर लोग ही हिम्मत के साथ प्लेटफार्म पर डटे हुए थे।

जब लेट की घोषणा हुई तब यात्रियों की प्रतिक्रिया देखने लायक थी

कोई कह रहा था, रेल्वे वाले झूठ बोलते हैं। तमिलनाडू के तीन डिब्बे डिरेल नहीं हो सकते, कम-से-कम पाँच-दस तो हुए ही होंगे।

—अरे साहब, बाईस डिब्बे की गाड़ी है। डबल एंजिन है। आँधी की तेजी से चलती है! अरे साहब सैकड़ों मरे होंगे। और ऐसे में तो साहब ट्रेन चौबीस घंटे में भी नहीं आ सकती।

चुनाव में प्रचार करने वालों की तरह वह लगातार रात को एक बजे तक यही बात दुहरा रहा था। तंग आकर मैंने उससे पूछा—यदि ऐसा ही तो फिर आप परेशान क्यों हो रहे हैं? जाइए घर। आराम कीजिए।

मैंने सोचा था, वह उत्तर न दे पायेगा पर उसने तपाक से जवाब दिया—मैं क्यों रुका हूँ। दूसरों को घर वापस भेजने के लिए।

मैंने कहा—बड़ा पुण्य कार्य कर रहे हैं आप।

एक साहब कैनवासिंग कर रहे थे—कैसा भी एक्सीडेंट हो रेल्वे वाले इतने एफीशीएंट हैं कि चार-पाँच घंट में ट्रैक ठीक कर ट्रेन रवाना कर सकते हैं।

तमिलनाडू, केरला, कर्नाटक, और ए०पी० एक्सप्रेस नागपुर से दिल्ली पन्द्रह घंटे में पहुँचा देती है। दिन में सोने के लिए बर्थ मिलती तो भी मायने न था। इतनी गर्मी में खिड़की खुली रखकर भी सोना असम्भव था। इसलिए ए० सी० चेयर कार जिसमें सेकंड क्लास से केवल दूने पैसे लगते हैं मैं इस गर्मी में वातानुकूल का सुख भोगने का लोभ संवरण न कर सका। आराम कुर्सी में पड़े-पड़े ऊँघ लूँगा।

चूँकि सब अव्यवस्थित हो गया था—जगह आसानी से मिल गयी। अन्दर खूब ठंडा था—जाड़े जैसा। कुर्सी पर बैठते ही आँखें बन्द हो गयीं।

दक्षिण भारतीय संगीत की तीव्र कर्कशता के बावजूद ऊँघने का उपक्रम जारी रख सका। पर करीब नौ बजे रूना लैला की मीठी आवाज में गीत शुरू हुआ—दमादम मस्त कलंदर···झूलेलाल···तो मजबूर होकर आँखें खोलनी पड़ीं। टेलीविज़न स्क्रीन पर झूम-झूमकर गाती हुई खूबसूरत रूना को देखकर पहले तो यही लगा—ख्वाब देख रहा हूँ।

रोज सुबह जागने पर सिगरेट पीने की तीव्र इच्छा न जाने कैसे दब गई। पता नहीं क्यों पर वातानुकूलित कुर्सीयान में सिगरेट पीने पर

बंदिश है। बाहर निकलकर पैसेज में पी सकते हैं पर वहाँ से टी० वी० तो देखा-सुना नहीं जा सकता।

कितने मजे की बात है कि सेकंड क्लास से चार गुना और आठ गुना खर्च करने वाले फर्स्ट क्लास और ए० सी० के यात्रियों को भी यह सुख नहीं मिलता। डिब्बों की डिजाइन की वजह से क्लोज़्ड सर्किट टी० वी० दिखाना शायद सम्भव नहीं। वैसे दक्षिण-रेल के सिवा मैंने यह सुविधा और किसी ट्रेन के वातानुकूलित कुर्सियान में नहीं देखी।

रूना लैला के बाद, लता मंगेशकर के लंदन के प्रसिद्ध आल्बर्ट हाल के प्रोग्राम की वीडीयो टेप दिखाई गयी। उसके बाद आशा और राहुल के विशेष कार्यक्रम की। दोपहर साढ़े बारह बजे भोपाल कैसे पहुँचे पता नहीं चला।

बाजू की कुर्सी में बैठा कर्नल बार-बार पूछकर खलल जरूर डाल देता था। हू इज शी ? हू इज दैट मैन ? और बताने पर वह कहता—ओह वंडरफुल ! आई हैव हर्ड ए लाट एबाउट दैम। वह थैले से बार-बार पानी की बोतल निकालता और एक ही घूँट पीता। तेज प्यास लगने पर उठकर लॉबी में कूलर का पानी पीने के कष्ट से बचने के लिए उससे बोतल माँगी, तो उसने कहा—नो, नो, आपको यह पानी पसंद नहीं आयेगा।

बड़ा अजीब लगा, पानी देने से भी इन्कार कर रहा है। पर बाद में उसने बताया—पानी में शराब—'जिन' के चार पेग मिला रखे हैं। वह सुबह से लगातार पी रहा था। हम सबने दो-तीन बार चाय कॉफी पी तब उसने क्यों नहीं बताया यह रहस्य बाद में समझ आया।

झाँसी में चाय के बाद कर्नल साहब ने चर्चा शुरू की बजट पर जो उसी दिन सुबह प्रकाशित हुआ था। मैंने कहा—डेफिसिट गैप बड़ा है, नोटें छापकर उसकी पूर्ति की जायेगी। मुद्रा का ज्यादा प्रसार होगा महँगाई ज्यादा बढ़ेगी। कर्नल ने कहा, यह तो गलत तरीका है। मैंने समझाया, पूँजीवादी व्यवस्था का विष-चक्र यही है। टैक्स बढ़ाओ तो और नोट छापो तो महँगाई तो बढ़ेगी ही।

आगे कहा—कर्नल, यह तो आम बजट की बात है छोड़ो उसे, दोपहर

को रेल्वे की कृपा से जो भोजन आपने लिया उसके बारे में क्या राय है ?

उसने कहा —साढ़े तीन रुपये के लायक तो खाना नहीं था।

मैं विस्तार से बताने लगा—चार दिन पहले याने 15 जून तक यह खाना रेल्वे रेस्तराँ में दो रुपये और ट्रेन में ढाई रुपये में दिया जाता था। सोलह तारीख से उसे क्रमश: तीन और साढ़े तीन कर दिया गया है। साथ ही एक मेहरबानी और की गयी है—एक सब्जी, पापड़ और एक मिठाई का टुकड़ा देना बन्द कर दिया गया है। यह सब भोजन को संतुलित करने के लिए जरूरी था। अब शायद इसकी जरूरत नहीं रही।

वह हैरान था—यह तो सरे आम बेईमानी है। दाम भी बढ़ा दिए और आयटम कम कर दिये।

मैंने कहा—जी हाँ। कुल मिलाकर दाम दूने कर दिए गये। रेल बजट में घाटे की पूर्ति के लिए बारह से पन्द्रह प्रतिशत किराया बढ़ाना प्रस्तावित है। पर भोजन में की गई यह बचत बजट में शामिल नहीं है, अतिरिक्त है। अब तक रेल खान-पान सेवा 'न मुनाफा न घाटा' के आधार पर चलायी जाती थी। जहाँ ठेकेदारों के सुपुर्द यह व्यवस्था नहीं थी वहाँ खाना कुछ ढंग का मिलता था। पर अब तो यात्री भोजन में से भी पूरा मुनाफा वसूल करने का इरादा है शासन का।

कर्नल ने उत्तेजित स्वर में कहा—यह तो सरे आम चोरी है, हमारी थाली से खाने की ! सीधा दो रुपया ! क्यों साहब, प्रतिदिन कितने यात्री भोजन करते होंगे ?

मैंने बताया—रेल के ही मुताबिक प्रतिदिन बीस लाख यात्री लंबी दूरी की यात्रा करते हैं। और पाँच लाख लोग भोजन करते हैं।

मैंने एक पत्रिका खोल ली। और रेल को होने वाले इस अतिरिक्त मुनाफे का हिसाब जोड़ने का काम कर्नल के जिम्मे छोड़ दिया।

5 अगस्त '80

राष्ट्रीय मजाक—परीक्षा

इलाहाबाद में उस दिन शाम को घूमकर लौटते समय एक गली के मुहाने पर लड़कों की एक भीड़ देखी। लड़के स्कूल के थे, नेकर पहने हुए। उनके ऊँचे उठे हाथ में नोट थे। हमको दो।···हमको भी।

लड़के बोर्ड की परीक्षा में कल सुबह जो पेपर आने वाला था उसकी साइकिलोस्टाइल्ड प्रतियाँ दस-दस रुपये में खरीद रहे थे।

बेचने वाला एक युवक पायजामा-कुरता पहने। सायकल में पेपरों का झोला लटकाये था। पैसे पहले लेता और पेपर बाद में देता। एक लड़के ने पूछा—कल यह पेपर नहीं आया तो ?

युवक ने कहा—कल भी तो बेचने आऊँगा। गलत निकले तो जूते मारना।

मदारी ने जैसे कहा हो—बच्चो, ताली बजाओ। लड़कों ने खुशी में तालियाँ बजायीं।

दूसरे दिन सुबह स्थानीय अखबार में उस वक्त चल रही परीक्षा के पूरे प्रश्न-पत्र सहित, पेपर आउट होने की न्यूज सुर्खियों में छपी थी। बोर्ड परीक्षा को एक मजाक बताया गया था। उस अखबार को अपना प्रतिष्ठा है। शहर में दफ्तरों, गली-कूचों में बोर्ड परीक्षा की चर्चा थी।

शाम को उसी समय नाटक का दूसरा दृश्य देखने वहाँ गया। दृश्य वही था। कल से आज भीड़ ज्यादा थी। प्रश्न-पत्र बेचने वाले युवक का इंतजार कर रहे थे। सबके चेहरे पर प्रसन्नता और कुतूहल के मिले-जुले

भाव थे।

इतने में वह युवक तेजी से सायकल पर आया। बच्चों के लिए जैसे देवदूत आ गया। सायकल से उतरते हुए उसने कहा—शोर मत करो। गली में अन्दर चलो। मैं भी थोड़ी दूरी रख पीछे हो लिया। युवक चलते हुए पूछ रहा था—क्यों, पेपर सही निकला ?

कुछ लड़कों ने जोर से कहा—हाँ-हाँ बिल्कुल सही निकला। युवक ने कहा—देखो भाई, अब कल के पेपर का बीस रुपया लगेगा। केवल बीस कापियाँ हैं।

लड़के सत्तर-अस्सी रहे होंगे। दो-तीन चार लड़कों ने गुट बनाकर बीस-बीस रुपये जोड़े और सब पेपर खरीद लिए।

दूसरे दिन सुबह अखबार में छपा कि बोर्ड ने पेपर आउट होने की सम्भावना के कारण रात को प्रश्न-पत्र बदल दिया है वगैरह।

जार्ज टाउन स्थित एक दफ्तर की ओर जाते हुए एक स्कूल के अहाते पर के फाटक पर लड़कों की एक भीड़ को नारेबाजी करते हुए देखा। करीब जाने पर नारे सुनकर हँसी आ गयी। नकल करने में पक्षपात नहीं चलेगा।

भीड़ में खड़े एक लड़के से पूछा—क्या बात है। लड़के ने सहज ढंग से कहा—देखो ना साहब, दूसरे लड़के तो किताब रखकर नकल मार रहे हैं और हम जो चिट बनाकर लाए हैं पकड़े जा रहे हैं। यह अन्याय कैसे चलेगा।

मैंने बरबस कहा—बिलकुल नहीं चलेगा। सरासर अन्याय है। मेरी सहानुभूति से अभिभूत होकर उसने आगे कहा—कल रात पेपर आउट हो गया था। हमने बीस रुपये में खरीदा, वह भी बदल दिया गया। और अब नकल मारने से भी रोका जा रहा है।

मैं कुछ और कहूँ उसके पहले वह अपने साथियों की भीड़ में जा मिला। मैं हैरान था अन्याय और पक्षपात के इस नए मापदंड की बात सुनकर।

उस दिन शाम की ट्रेन से घर वापस आने के लिए निकला। अभी एक हफ्ते पहले पुनः इलाहाबाद जाना पड़ा। दो रोज रुका। व्यस्तता के कारण दूसरी बातों की ओर ध्यान नहीं दे पाया। दूसरे, चुनाव-प्रचार की

तेजी ने अन्य मुद्दों को पीछे ढकेल दिया था ।

शाम को वाराणसी दादर से इटारसी के लिए निकला । ट्रेन छूटने में कोई पाँच-सात मिनट की देर थी । बोतल में पानी भरने के लिए मैं नीचे उतरने के लिए सोच रहा था । इतने में एक परिवार, जिसमें पति-पत्नी के सिवा तीन अदद बच्चे और सोलह-सत्रह अदद सामान था, कुलियों के जत्थे के साथ आक्रमणकारी की तेजी से हमारे कोच में घुसा । सामान दरवाजे के पास जहाँ खुली जगह दिख रही थी वहाँ रखा । ट्रेन जब चलने लगी तो हारमोनियम और तोते का पिंजड़ा भी डिब्बे में आ गया । पहली दृष्टि में लगता था, कोई सर्कस जा रहा है ।

ट्रेन ने गति पकड़ी । वे लोग पसीने से तरबतर हो रहे थे और हाँफ रहे थे । भाग्य से उनकी तीनों बर्थ मेरे ही सामने थीं । वे लोग बैठे । सोच रहा था ये लोग जरा नार्मल हों तो इनसे पूछें कि इतना सामान साथ लेकर वे कहाँ और क्यों जा रहे हैं । कोई आधे घंटे में दो बार पानी और हवा लगने पर पति-पत्नी सामान्य हुए ।

पति महोदय कुछ जोर से बड़बड़ाए—बाप रे ! क्या परेशानी है । वाह रे बोर्ड-परीक्षा ।

मैं चौंका । पूछा, बोर्ड परीक्षा से उनकी तकलीफ कैसे जुड़ी है ? अरे साहब उसी की तो परेशानी है यह सब । दो बार रिजर्वेशन कैंसिल करवाना पड़ा । हम इलाहाबाद छोड़कर जा रहे हैं । पिछले महीने इनकी परीक्षा खत्म होगी इस हिसाब से 20 अप्रैल का रिज़र्वेशन करवाया था, सामान भी बुक करने की तैयारी कर रखी थी । पेपर आउट हुए तो बोर्ड को अखबारों ने आड़े हाथ लिया । नतीजा यह हुआ कि परीक्षा आधे में रद्द कर दुबारा लेने की घोषणा की गई । उसके मुताबिक 28 का रिज़र्वेशन करवाया । फिर गड़बड़ी हुई । परीक्षा की तारीख एक हफ्ते के लिए बढ़ाई गई । रिज़र्वेशन कैंसल करवाना पड़ा । और आज 16 मई का करवाया ।

हमदर्दी जताते हुए मैंने कहा—वाकई बहुत परेशानी हुई होगी । खैर, निपट तो गया । बीबीजी बोलीं—क्या निपटा भई । दोनों बार परीक्षा पेपर आउट होने के बहाने रद्द हुई । तो इस बार क्या पेपर आउट नहीं

हुए। इस बार भी पेपर आउट हुए। हुआ सिर्फ यह कि अखबारों को पता नहीं चला।

मैं हैरान रह गया।

नागपुर आते समय रायपुर के एक सज्जन साथ थे। बातचीत चल पड़ी शिक्षा और परीक्षा की। उन्होंने शायराना अंदाज में समीक्षा की—

यह कैसी शिक्षा और परीक्षा
पहली दूसरी पास बिना परीक्षा
तीसरी चौथी में ढकेल कर पास
पाँचवीं में सामूहिक नकल
हम कर रहे तेजी से विकास!

24 मई '80

सुबहे बनारस…!

मई में बनारस गया था। होटल मैनेजर से पूछा—आपके शहर में क्या है देखने लायक ?

उसने कहा—सारनाथ, दशाश्वमेध घाट, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी वगैरह।

मैंने कहा—और सुबह ? सुबहे बनारस !

उसने मुस्कुराकर कहा—सर, मैंने कभी सूर्योदय देखा नहीं। आठ बजे के बाद ही उठता हूँ।

मुझे हैरानी हुई और उसके दुर्भाग्य पर गुस्सा भी आया। सुबह और शाम। सूर्योदय और सूर्यास्त हमारे जीवन की गति को व्यक्त करता प्रकृति का सबसे मनोहारी माध्यम है। पर न सुबह एक जैसी होती है न शाम। प्रकृति नए रंग उँड़ेलती है। ताजगी बिखेरती है। उत्साह का संचार करती है। माना मैंने कि बड़े शहरों में यह संभव न हो, पर जहाँ भी संभव है सूर्योदय और सूर्यास्त देखिए और दिलो-दिमाग में होने वाले परिवर्तन को महसूस कीजिए।

शाम को एक परिचित से भी पूछा। उन्होंने काशी विश्वनाथ व अन्नपूर्णा मंदिर व अनेक मंदिरों के साथ उपरोक्त फेहरिस्त दुहरा दी। चूंकि मेरे परिचित विद्वानों में खपने लायक क्वालीफिकेशन रखते हैं उनसे मुझे दूसरे ही उत्तर की उम्मीद थी। जब मैंने कहा—सुबह।

उन्होंने कहा—उसमें क्या है, सुबह सुबह होती है। हर जगह होती

है।···यों कल सुबह नौ बजे आइये, आपको ये सब स्थान दिखाने की व्यवस्था हो जाएगी। उनसे कैसे कहता कि देश का कोई शहर मैंने गाइड के भरोसे नहीं देखा। देखने का नजरिया होता है। अपने तई ही देखना पसन्द करता हूँ।

सुबह पाँच बजने को थे। हनुमान घाट पहुँचकर एक नाव पसन्द की। मल्लाह था बजरंगी। प्रौढ़, मध्य कद, सुगठित श्याम वर्ण। मैंने कहा—सुबहे बनारस देखने आया हूँ।

उसने कहा—जरूर दिखायेंगे हुजूर! बस आप बैठिये। उसने कमीज उतारी। ठीक सामने नाव के एक सिरे पर पतवार लेकर बैठा। धीरे-धीरे उसने शुरू किया—गंगा किनारे यहाँ अस्सी घाट हैं। कुछ टूट चुके हैं। जहाँ से आप बैठे वह अब अंतिम प्रसिद्ध घाट है। जिस ओर जा रहे हैं—पूरब में अंतिम राजघाट है। यहाँ गंगा में मिलने वाली वरुणा नदी और अस्सी घाट को लेकर काशी बनी वाराणसी।

कुछ देर बाद उसने पूछा—हुजूर, आपने शामे अवध और शबे मालवा देखी है? मैं चौंका। कहा—हाँ देखी है और तभी सुबहे बनारस देखने आया हूँ। लखनऊ की शाम और मालवा की रात में जो हवा चलती है—वह दिलो-दिमाग पर छा जाती है। एक अजीब सुकून देती है। हवा नहीं एक निःशब्द संगीत बजता है। जो दिल की गहराई को छू लेता है। यह सही है कि अवध की शाम अब ढूँढ़नी पड़ती है। लखनऊ बहुत बदल गया है। बीस साल पहले वहाँ जो शाम होती थी वह आज नहीं। बहुत कोलाहल बढ़ गया है।···पर बजरंगी, क्या तुमने यह सब देखा है?

उसने एक लंबी साँस लेकर कहा—नहीं हुजूर, हम कहाँ से देखेंगे ये सब। किराये की नाव चलाते हैं। आधा मालिक को देते हैं। पाँच-दस जो बच जाता है उसमें गुजर करते हैं। हम क्या देखेंगे। बस आप लोगन की सेवा करते हैं। आप लोगों से ही सीख लेते हैं।

दिल में कहा—बजरंगी, डाक्टरेट तो तुम्हें दी जानी चाहिए। कम से कम तुम यह तो जानते हो कि बनारस की कोई अलग सुबह होती है।

वह बता रहा था—वो हरिश्चन्द्र घाट था। ये विजयानगरम घाट···वो जो महाराजा क्रिकेट खेलते थे उन्होंने बनवाया है। वह जो सामने आ

रहा है दशाश्वमेघ घाट है—बस यहीं से बनारस के घाटों की खूबसूरती शुरू होती है। पर हुजूर, आप बहुत गलत मौसम में आए हैं।

आसमान अजीब से घने धुँधलेपन के कारण उदास सा लगता था। सामने जिस कोने से सूरज निकल रहा था वहाँ भी वह लालिमा नहीं बिखेर सक रहा था। पक्षियों के झुंड किनारे उड़कर बीच तक आते और चुपचाप वापस लौट जाते। कोई चहचहाट नहीं और कोई शोर नहीं। वे भी वातावरण की उदासी को नहीं तोड़ पा रहे थे। दूर घाटों पर नहाने वाले हजारों भक्तों की भीड़ में से कभी-कभार कोई ऊँची आवाज सुनाई देती थी। अन्यथा वे हिलते-डुलते रंग-बिरंगे पुतलों-से लगते थे। उमस-भरे वातावरण में हवा जैसे रुक गई थी। इसके बाद भी घाटों की खूबसूरती अपनी जगह थी। कोई सौ फुट ऊँचे घाट पर उतने ही ऊँचे मकान यहाँ अर्ध-चंद्राकार में बहती गंगा की गहराई को भव्यता प्रदान करते हैं।···काश आसमान साफ होता और हवा चल रही होती, तो सुबहे बनारस की कल्पना करने की जरूरत नहीं रह जाती।

काश पर्यटक विभाग में कोई कल्पनाशील व्यक्ति होता। घाटों पर बैठने वाले पंडे छाँव करने के लिए बाँस की चटाई की बड़ी गोल छतरियाँ लगाकर बैठते हैं। पंडों के बारे में मेरी जो राय है उसकी चर्चा अपनी जगह होगी। वे बैठते हैं—बैठें। उनकी बाँस की छतरियों को ऊपर की तरफ से आकर्षक रंगों में रँगा जाए तो दूर से घाट पर बदरंग धब्बों की जगह रंग-बिरंगा नज्जारा दिखेगा, दृश्य का सौंदर्य बढ़ेगा। आकर्षण में वृद्धि होगी।

सब कर गुजरने के बाद स्वर्ग जाना है तो अपने मृत देह का दाहसंस्कार दशाश्वमेध घाट पर हो ऐसी व्यवस्था कर दीजिए···बस! स्वर्ग का रोड परमिट यहाँ का डोम राजा देता है। अग्नि संस्कार का टैक्स कम से कम पच्चीस रुपये और ज्यादा से ज्यादा वह तो आपकी हैसियत पर निर्भर करता है। कहते हैं इन्कम टैक्स वालों को वेल्थ टैक्स की सही जानकारी न देने वाले यहाँ डोम को सही जानकारी देते हैं और वह मृतक की संपत्ति का दस प्रतिशत तक माँग सकता है।

अंधविश्वास की भी एक हद होती है—ऐसा पूर्णरूपेण आस्तिक हमारी

बेगम भी कहती हैं। पर जब अखबारों में कमलापति त्रिपाठी, राजनारायण, और चन्द्रशेखर जैसे नेताओं की डोम राजा के साथ वाली तस्वीरें देखता हूँ, तब लगता है बेगम गलत कहती हैं। धर्मान्धता की कोई सीमा नहीं। यदि सीमा होती तो धर्म के नाम पर दंगे क्यों होते ? गाय या सूअर के कटने की अफवाह मात्र पर हिन्दू और मुसलमान इन्सानों का खून क्यों करते ? मुझे यकीन है कि निन्यानबे प्रतिशत भारतीय हिन्दू-मुसलमान, सिख या क्रिश्चियन सब कम्युनल हैं। सांप्रदायिक हैं। असहिष्णु और संकीर्णतावादी हैं। नतीजा यह है कि ब्राह्मण ब्राह्मणों में, हरिजन हरिजनों में ऊँच-नीच ढूँढ़ता है। शिया-सुन्नी ऊँच-नीच मानते हैं। सिख जाट सिख और पंजाबी में फर्क करता है। दक्षिण में गरीब ईसाइयों की अलग कब्रगाह और अमीरों की दूसरी का विवाद पिछले वर्ष ही उभरकर सामने आया था। जीवित लोगों का विरोध तो है ही—मुर्दों का भी ! कहाँ है अन्धविश्वास-धर्मान्धता की सीमा। सीमा होती तो धर्म के नाम पर कौमी दंगे न होते।

बजरंगी ने लाल रंग से पुती विशाल अट्टालिका दिखाते हुए कहा—ये है वो डोम का महल। आप तो जानते ही होंगे, राजा हरिश्चन्द्र भी इन के यहाँ नौकर थे।

मैंने कहा—हाँ बजरंगी, कभी बचपन में ये सब पढ़ा था। पर यकीन नहीं होता था।

उसने कहा—अब तो यकीन होगा साहब।...तब की छोड़िये, आज भी बड़े-बड़े नेता, सत्ताधीश डोम को टैक्स दिये बिना चिता में आग नहीं दे सकते।

मैंने कहा—अजीब है। भगवान का हवाला देने वाले राजाओं के राज्य, प्रीवीपर्स सब खत्म हो गये। इसकी हुकूमत बरकरार है।

—यही तो सवाल है साहब। सैकड़ों वर्षों से इसकी हुकूमत कायम है। क्योंकि हम धर्म के नाम पर अन्धे हैं। जब बड़े-बड़े नेता और न्यायाधीशों का यह हाल है तो हम सबका क्या होगा।

इस सवाल ने मुझे झकझोर दिया। निरुत्तर, चुपचाप उसकी बातें सुनता रहा। बनारस राँड, साँड, पान और पंडों का शहर है। बाकी सबको आप देखकर समझ सकते हैं। पर यहाँ के पंडे ? बाप रे ! क्या नहीं करते।

फिर उसने उनका लूट-खसोट और चरित्रहीनता के कुछ रोमांचक किस्से सुनाये। तब तक हम राजघाट पहुँच चुके थे। उसने पूछा—ये आखिरी घाट है, अब वापस चलें।

आठ बज चुके थे। अब आसमान भी साफ हो चला था। सूरज तप रहा था। पर अब हवा भी चल रही थी। उदासी का कुहासा छँट गया था। वातावरण खुशनुमा हो गया था। उसने कहा—यहाँ अक्टूबर से मार्च के बीच में कभी आइये साहब, तब सुबह देखिए। दशाश्वमेध घाट पर नहायेंगे साहब? सब यहाँ नहाकर बाबा विश्वनाथ के दर्शन करते हैं।

मैंने कहा—नहीं बजरंगी, नहीं नहाना है। मैंने हरिश्चन्द्र घाट पर एक अधजले मुर्दे को गंगा में बहते देखा तब से न जाने कैसा लग रहा है। वैसे भी होटल में गंगा का पानी ही आता है, साफ किया हुआ।

उसने कहा—हुजूर! फिर भी आप बाबा विश्वनाथ और अन्नपूर्णा के दर्शन जरूर कर लेना। बड़ा पुण्य मिलता है।

मैंने उसे कोई उत्तर नहीं दिया।

8 सितम्बर '80

कर्फ्यू और बाढ़ में फँसा इलाहाबाद : बंद तस्वीरें

पिछले दिनों इलाहाबाद पर इंसानी करतूतों ने दो कहर बरपा किये। शहर के एक तिहाई हिस्से में कर्फ्यू की वजह से सुबह तीन और शाम के तीन घंटों की छूट छोड़कर लोग अपने घरों में कैद रहे हैं। दूसरी ओर मोहल्ले अल्लाहपुर के पचहत्तर हजार लोग पूरी बस्ती में घुस आए बाढ़ के पानी में एक हफ्ते के बाद भी चार से छः फुट पानी में डूबे नर्क की जिन्दगी बसर कर रहे हैं। सौ क्यूसेक पानी प्रति मिनट खींचकर बाहर फेंकने वाले पम्पों के चौबीस घंटे लगातार चलने के बाद भी प्रतिदिन केवल आधा फुट पानी की सतह कम हो रही है। बीच-बीच में बारिश भी हो जाती है। लोग नहीं जानते कि इस नारकीय यंत्रणा से उन्हें मुक्ति कब मिलेगी।

शहर के दो-तिहाई आबादी वाले इन इलाकों को छोड़कर सिविल लाइन क्षेत्र में सब कुछ सामान्य था। ऐसा न होता तो एक सितम्बर को जिन्दगी के ये दोनों पहलू क्योंकर देखने को मिलते।

ईद के मुरादाबाद के दंगों के दो दिन बाद एक मुस्लिम होटल में ठहरे कुछ लोगों ने बम फोड़े और पिस्तौल से गोलियाँ चलाईं। चाहे आप एक लाख लोग अमन पसन्द हों, पर गड़बड़ी फैलाने के इरादे से संगठित सौ लोगों का दस्ता भी आपको परेशानी में डाल सकता है। जिलाधीश श्री रिजवी ने बहुत तेजी से सख्त कदम उठाए। ऐसे लोगों को ढूँढ़कर गिरफ्तार करने के लिए फौरन अड़तालीस घंटे का कर्फ्यू लागू

किया गया। जानस्टन गंज के लोगों के अनुसार दो रोज मार्शल ला था। सड़क पर देखते ही गिरफ्तार करने से लेकर गोली मारने के आदेश दिए गये थे। पहले ही दिन छै जानें गईं। उसके बाद स्थिति पर काबू पा लिया गया। बदमाशों के मंसूबे धरे रह गये।

जानस्टन गंज, कोतवाली, नखास, मीरापुर आदि सब मेरे देखे हुए इलाके हैं। हिन्दू-मुसलमान इन मोहल्लों में सदियों से भाईचारे के साथ रहते आए हैं। परन्तु उत्तर प्रदेश के मध्य एवं पश्चिमी हिस्सों में हजारों की संख्या में पाकिस्तानी पार-पत्र एवं भारतीय वीसा की अवधि समाप्त होने के बाद भी अवैध ढंग से टिके हुए इन लापता लोगों में से चंद लोगों ने योजनाबद्ध ढंग से काम किया। पाकिस्तान से आए हुए इन हजारों लोगों में अधिकांश पाकिस्तान में व्याप्त गरीबी, बेकारी भुखमरी और सैनिक तानाशाही जुल्मों से तंग आए लोग हैं। चंद लोग बदमाशी करने के इरादे से भी आए हैं। ऐसे चंद लोग भी गड़बड़ी फैलाने को काफी हैं। उत्तर प्रदेश में मुसलमानों में मुख्यत: दो वर्ग हैं : एक तो जमींदार, दूसरे वे जो कालीन बुनने, पीतल के नक्काशी वाले बर्तन बनाने जैसे बेहतरीन दस्तकारी के कामगार गरीब लोग हैं। ऊपर बताए इलाकों में ये गरीब लोग सँकरी गन्दी गलियों में टाट में भी पैवंद लगाए पर्दों वाले किराए की खोलियों में रहते हैं। वर्षों से दस्तकारी की खूबसूरत चीजें बनाकर देश-विदेश के अमीरों के ड्राइंग-रूम सजाने वाले ये लोग इतने शोषित हैं कि आज भी रोज कमाने के बाद ही घर में चूल्हे जला पाते हैं। ऐसा कोई भी हादसा जो आम जिन्दगी को, कुछ दिनों के लिए ही सही, डिस्टर्ब कर दे इनको सबसे ज्यादा महँगा पड़ता है। इनको भूखे रहना पड़ता है। जो अमीर मुसलमान हैं वे अधिकांश शहर के उन मुहल्लों में बँगले और मशहूर उद्योगपति शेख रब्बानी साहब की तरह आलीशान कोठियों में रहते हैं जिनमें पैसे वाले हिन्दू रहते हैं। जाहिर है कि इन दोनों वर्ग के लोगों को तो ये सब करने की फुर्सत हो नहीं सकती। ऐसी बदमाशी करने वाले को पहचानना कोई मुश्किल काम नहीं। वे हिन्दू भी होते हैं और मुसलमान भी।

कर्फ्यू वाले इलाके में सुबह 10 बजे गया था। बाजार में दहशत

में डूबे बुझे-बुझे से हजारों लोग घर के लिए निहायत जरूरी चीजें जल्दी-जल्दी खरीदने में व्यस्त थे। एक ओर पिछले पन्द्रह दिनों से रोजी नहीं मिल रही थी, दूसरी ओर कफन चोरों ने जरूरी जिन्सों के दाम मनमाने बढ़ा दिए थे। जो रोजमर्रा की जरूरत की चीजें नहीं बेचते उनका बुरा हाल था। जूतों की एक अच्छी दूकान के मालिक ने कहा—चार दिन से कर्फ्यू में छः घंटे की ढील हुई है तब से दूकान में साफ-सफाई की गरज से आकर बैठता हूँ। दस रोज तो घर जैसे जेल हो गया था। जानता हूँ, जूते खरीदने लोग तब आएँगे जब राशन और कपड़े से पैसे बचेंगे। एक पैसे की बिक्री नहीं होती, क्या करूँ? घर में कब तक बैठा रहूँ।

22-23 अगस्त को इलाहाबाद क्षेत्र में चौबीस घंटे में 15 से 20 इंच बारिश हुई। नदी के पानी को रोक रखने वाले 1760 मीटर लम्बे बख्शी बाँध की दूसरी ओर एक लम्बे-चौड़े निचले इलाके में अल्लाहपुर बसा हुआ है। मेरे शहर से भी बड़ी आबादी है। इस इलाके में थोड़ी बहुत अच्छी बारिश होने पर पानी भर जाता है। पर उसे बाँध की ओर प्रवाहित करने के लिए मोरीगेट और दो 50 क्यूसेक क्षमता के पम्प लगे हुए हैं जिन्हें चालू रखने पर इस क्षेत्र को कोई तकलीफ नहीं होती। शायद उस दिन इंचार्ज इंजीनियर महोदय सिनेमा देखकर घर चले गये। पानी बाहर निकालने के दोनों तरीके अपने सिरहाने रखकर सो गए। कुछ देर बाद यहाँ के लोगों को बचाने वाले वे पम्प भी डूब गए।

और पूरे इलाके में पानी चोर कदमों से घुस आया। खाट पर गहरी नींद में सो रहे लोग बिस्तर नीचे से गीले होने पर चौंककर जागे। घुप्प अँधेरे में जमीन पर पैर रखने की कोशिश की तब समझ आया कि बाढ़ का पानी मकानों में घुस गया है। तेजी से बढ़ता जा रहा है। लोगों के पास जान बचाने के लिए घरों में ही ऊँची जगह तलाशने के सिवा और कोई चारा न था। पूरी आबादी में कुहराम मच गया। एक मंजिला मकान के लोग छप्पर और छतों पर ले-देकर चढ़े। तीन मंजिला सरकारी क्वार्टरों के लोग जीने से ऊपरी मंजिलों पर आ गए। बिजली बंद। मोमबत्तियाँ और लालटेन जलाने की कोई गुंजाइश नहीं। ऊपर से तेज बारिश जारी··· सुबह तक तो हर मकान में छः से आठ फुट पानी। शहर के बाकी हिस्से

से हर तरह से सम्पर्क टूट गया था। लोगों ने पानी, खाना और बिजली के बगैर अड़तालीस घंटे बाद राहत पहुँचते तक कैसे गुजारे होंगे इसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है।

जिला प्रशासन दो मुसीबतों से जूझ रहा था। एक को कर्फ्यू, गिरफ्तारी और बन्दूकों से रोका जा सकता था, पर दूसरी से निपटने के लिए कल्पनातीत साधनों को जुटाने का सवाल था। इलाके से लाखों क्यूसेक पानी निकालना। लोगों की जानें बचाना। रसद पहुँचाना। और यह सब किया जा सकता था केवल नावों के सीमित साधनों से। ऊपर से यह मुख्यमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह का लोकसभा निर्वाचन-क्षेत्र है (लोकसभा से उन्होंने अभी इस्तीफा दिया है)। अब आप प्रशासन की मुसीबतों का अंदाजा लगा सकते हैं। खुशामद के लिए सहानुभूति जताने वाले पचासों डिग्नीटरीज की भी जैसे बाढ़ आ गई। बाकी सब लोगों के बावजूद उनको पहले अटेंड करना चाहिए। इनका इंतजाम पहले होना चाहिए।

एक परिचित अधिकारी जो अल्लाहपुर में रहते हैं छः दिन बाद नाव में बैठकर किसी तरह दफ्तर पहुँचे। मैंने कहा, मुझे कतई उम्मीद न थी कि इन मुसीबतों के बावजूद आप यहाँ आयेंगे। उन्होंने कहा, घर में तो अब भी चार फुट पानी है पर कब तक जेल में बैठा रहता। तबीयत खराब होने लगी थी। कुछ सामान भी ले जाना है। अँधेरा होने के पहले घर पहुँचना जरूरी है। नहीं तो बड़ी परेशानी होगी। उन्होंने एक हफ्ते के लिए दस रुपया रोज पर निश्चित समय पर सड़क तक लाने ले जाने के लिए नाव की व्यवस्था की थी।

अल्लाहपुर देखने पहुँचा तो बख्शी बाँध के भीतर जैसे समंदर ठाठें मार रहा था। दूसरी ओर पानी में डूबी बस्ती में छतों पर लोग दिखाई देते थे। पचासों नावें लाने ले जाने में लगी थीं। बाँध के नीचे कतार से लगे बीसों पम्प अनवरत पानी खींचकर बाँध में उगल रहे थे। बिजली के गिरे खंभों को खड़ा करने, टूटे तारों को जोड़ने में व्यस्त थे। अखबारों में ऐसी समाज सेवी संस्थाओं, जो छः दर्जन केले बाँटते सदस्यों को बताने के लिए सौ रुपये के फोटो खिचवाती हैं, की जनसेवा की सूचनाएँ पढ़ने को मिलती थीं। एक हफ्ते में किसी भी तरह पानी खींच लिया जाना चाहिए

इस किस्म के मंत्रियों, नेताओं के आदेश और बयान पढ़ने को मिलते थे। युद्ध-स्तर पर मुसीबतों से निपटने के लिए प्रयत्नशील प्रशासन की गलतियाँ बताने वाले बयान छप रहे थे। सब पढ़कर बड़ी कोफ्त होती थी।

पानी आज नहीं कुछ दिन बाद तो हटेगा, पर अभी तो रुका हुआ पानी दुर्गंधमय और विषाक्त होता जा रहा है। मजबूर लोग उसी में मल-मूत्र त्याग कर रहे हैं। पचासों मरे मवेशियों की लाशें सड़ रही हैं। साँप-बिच्छू कीड़े-मकोड़े घरों में घुस आए हैं। न जाने किस महामारी का विस्फोट होगा। मोहल्ले में हिन्दू-मुसलमान सब हैं। पर कोई किसी की जात नहीं पूछता, दूसरे पर शुबहा नहीं करता। यहाँ भी लोग बुझे-बुझे-से हैं। कर्फ्यू वाले हिस्से में भी लोग बुझे-बुझे-से हैं। पर वहाँ शुबहे और अफवाहों की वजह से और यहाँ एक इन्सान की लापरवाही से ढाये गये कहर की वजह से।

16 सितम्बर '80

गज़ल ही क्यों ?

गज़ल की बात कहने जा रहा हूँ तो एक मित्र की याद आती है।

स्टैण्डर्ड मोटर्स वालों ने चार पाँच साल पहले पहली बार चार दरवाजे वाला माडल निकाला था। उनका नाम रखा था गैजल यानी हिरन। मित्र ने उसे खरीदकर कहा—देखो जी, गज़ल लाया हूँ। मैंने कहा—भाई मेरे, ये गैजल है—गज़ल नहीं। उसका जवाब था अंग्रेजी जानता नहीं। गज़लें बहुत पसंद हैं। उसे ही सुनता हूँ तो इसे भी गजल समझ कर लाया हूँ। मेरे लिए तो यह गज़ल ही है।

यहाँ मैं उनकी गजल गाड़ी की बात नहीं कर रहा।

अहमदाबाद में एक परिचित रेडियो की दुकान के मालिक—आग्रह-पूर्वक बिस्मिल्ला खां की शहनाई का लेटेस्ट रिकार्ड सुना रहे थे। दुकान में कोई भीड़ नहीं थी। इस दौरान एक नवजवान लड़के ने प्रवेश किया। उसने बिल्कुल लेटेस्ट किस्म की पाँयचे औंधे किये जीन्स पर—'आई एम ए स्मगलर' प्रिंट वाली टीशर्ट पहन रखी थी। दुकानदार मित्र से वह परि-चित था। लड़के ने सीधा सवाल दागा—जगजीतसिंह और गुलाम अली की लेटेस्ट कैसेट्स आयी कि नहीं ?

ऐसे लड़के से मैंने गज़लों के कैसेट्स या रिकार्ड माँगने की उम्मीद नहीं की थी। उसकी पीढ़ी को तो अमरीकी प्रभाव ने कपड़ों से लेकर दिलो-दिमाग, बातचीत हर मामले में भ्रष्ट किया है। संगीत में बीटल्स, रॉक एण्ड रोल, पॉप उसके आदर्श होते हैं। भारतीयों पर बहुत मेहरबान

हुए तो राहुलदेव बर्मन, किशोरकुमार के पाश्चात्य धुनों वाले हाँ···हूँ··· और उषा अय्यर के पॉप सांग्स बर्दाश्त कर लिये···बस ! मैं सोचने लगा—ये लड़का और गज़ल ।

दूकानदार ने कहा—गुलाम अली की ये रही···जगजीत की परसों मिल जायेगी । लड़के ने कैसेट पर छपे गीतों के शीर्षक पढ़े और बिना कुछ कहे रुपये निकाल कर दे दिये । सुनाने का भी आग्रह नहीं किया । जेब में रखी और बाहर खड़ी अपनी गर्लफ्रेंड को स्कूटर पर पीछे बिठा कर तेजी से चला गया ।

मैंने मित्र से कहा—ऐसे लड़के भी गज़लें सुनने लगे ।

मेरा मित्र व्यापारी ज्यादा है । 'टेस्ट' कमजोर है । उसे मेरी बात समझ में नहीं आयी । उसने कहा—क्यों ? हर तरह के ग्राहक होते हैं । हर तरह की पसंद होती है ।

मैंने समझाने की कोशिश की—सवाल हर तरह के ग्राहक और पसंद का नहीं । सवाल है कि ऐसे लोग जो पश्चिम का हर मामले में अंधानु-करण कर गौरवान्वित होते हैं—भारतीय संगीत पर कैसे कृपा करने लगे ?

फिर भी मित्र के पल्ले बात नहीं पड़ी । तब मैंने एक वकील की तरह सीधे सवाल पूछना शुरू किया—आजकल कौन-से रिकार्ड ज्यादा बिकते हैं ।

उसने कहा—गज़लों के । मैंने पूछा—किसकी गज़लें ।

उसने कहा—हिन्दुस्तानी गायकों में जगजीत-चित्रा, राजेन्द्र-नीना मेहता, तलत-अजीज । पाकिस्तानियों में मेंहदी हसन और गुलाम अली ।

मैंने पूछा—क्यों ज्यादा बिकती हैं ? फिल्मी गाने अभी क्यों ज्यादा नहीं बिकते ।

वह जैसे चौंका । मुस्कुरा कर बोला—ओ···समझा—तुम क्या कहना चाहते हो । सही बात तो यह है कि पिछले दो-तीन वर्षों में कोई भी ऐसा गीत नहीं बना जो बहुत पापुलर हो और स्थायी हो ।

बीच में रोक कर मैंने कहा—अब तुम समझे बात को । आगे बोलो, लोग क्यों नहीं खरीदते ?

उसने बयान जारी रखा। चालू गीत तो किसी भी होटल, पान-दुकान, शादी, स्वागत समारोहों में जोर-शोर से सुनायी पड़ जाते हैं। आजकल एक एल-पी का कैसेट चालीस रुपये का होता है। इसलिए लोग वही खरीदना चाहते हैं जो बार-बार सुना जा सके। स्थायी किस्म का हो। महीने-भर बाद सुनने की भी इच्छा न हो, उसके लिए कौन इतना पैसा खर्च करेगा।

अब मैं प्रसन्न था। वह ठीक वही बात कर रहा था जो मैं बहुत दिनों से सोच रहा था। उसने आर्थिक पक्ष को सही ढंग से रखा था। अब दूसरा पक्ष मेरे सुपुर्द था।

गज़लें पहले भी गायी जाती थीं। सहगल, पंकज मल्लिक, रफी, तलत महमूद, मुकेश, लता आदि फिल्मों से और ग़ैर-फिल्मी क्षेत्र से हेमन्तकुमार, जगमोहन सन् '40 से '65 तक बहुत से लोकप्रिय गायक रहे हैं। इन सब का मूल आधार था अच्छी कविता, गीत और शास्त्रीय संगीत।

गज़ल मूल रूप में उर्दू की वह रूमानी कविता है जिसे गाया जा सकता है। शेक्सपीयर ने अपनी प्रसिद्ध कविता 'आरफियम' में कहा है— हमारे सबसे मधुर गीत वे हैं जो हमारी दुःखद अनुभूतियों को व्यक्त करते हैं। गज़ल इस मामले में बेजोड़ काव्य-विधा है।

यों भी अच्छी कविता मन में बस जाती है। हमारी स्मृति की स्थायी निधि बन जाती है। मधुर गीत को उसके अनुकूल राग, लय, स्वर मिल जाता है तो वह दिल की गहराइयों को छू जाता है। मन में ऐसा बस जाता है कि 'स्वयं का स्वर मधुर है या कर्कश' इस की परवाह किये बग़ैर हम अकेले में अनायास गुनगुना उठते हैं, और जीवन-भर गुनगुनाते रहते हैं।

ऐसे गीत पिछले कुछ वर्षों से आ ही नहीं रहे हैं। न कविता ढंग की होती है न संगीत। लोग आज भी पचास साल पुरानी सहगल की गज़ल सुनना पसंद करते हैं। सुबह आठ के करीब सहगल की एक गज़ल रेडियो सीलोन से सुनने के लिए लाखों लोग इन्तजार करते हैं।

गीत की वास्तविक लोकप्रियता का मापदण्ड बिनाका गीतमाला या फिल्म फेयर अवार्ड नहीं है। रिकार्ड बनाने वाली कंपनियों और फिल्म निर्माता, संगीत-निर्देशकों के इशारे पर गीत-माला की पायदानों पर गाने

खिसकते रहते हैं। अवार्ड की व्यवस्था हो जाती है। गीत की लोकप्रियता में आम आदमी जो बार-बार सुनना पसंद करता है और गुनगुनाता है उससे तय करता हूँ।

मुझे जगजीतसिंह और राजेन्द्र मेहता के स्टेज के अतिरिक्त महफिली कार्यक्रम सुनने और गज़ल पर चर्चा करने का सौभाग्य प्राप्त है। यह सही है कि इन गज़ल गायकों ने नये वाद्य यंत्रों, आर्केस्ट्रा आदि के साथ प्रस्तुत किया। एक नया रंग दिया है। इसकी शुरुआत मेंहदी हसन ने की थी। परन्तु केवल नया रंग ही गज़ल को लोकप्रिय बना सकता है ऐसी बात नहीं।

नये अच्छे कलाकार एक मोनोटनी को तोड़ने की वजह से बरबस आकृष्ट करते हैं—और पापुलर भी हो जाते हैं। परन्तु फिर भी इनका एक दायरा होता है। एक वर्ग ही इन्हें पसंद करता है। पर इस बार तो गज़लों ने वर्गों की सीमाएँ तोड़ दी हैं। आरंभ में मैंने गुजरात की बात की। गुजरात में हिन्दी सही ढंग से बोलने वाले कम मिलते हैं, उर्दू की तो बात ही छोड़िये। विभिन्न स्थानों में बड़े-छोटे हर रेस्तराँ में, पान-दुकान में, गली-कूचे में गज़लें ही सुनायी देती हैं। तहेदिल से खुशी होती है।

अमरीकी प्रभावपूर्ण व्यापारिकता, सशक्त प्रचार और सब हथकंडों के बाद भी वर्तमान फिल्म संगीत नहीं चल पा रहा है। इससे जो रिक्तता (वायड) बना है उसे निःसन्देह गज़लों ने भरा है।

पर साथ ही यह भी सही है कि उस जमाने में रिकार्डेड संगीत का उतना प्रचार-प्रसार नहीं था जितना आज है। फिर भी मैंने जो नाम गिनाये हैं, देश के पैमाने पर उनकी लोकप्रियता आज के गुलाम अली, जगजीत और मेंहदी हसन से कम नहीं थी। जब से कैसेट्स आयी हैं, संगीत ज्यादा सुलभ और मुखर हुआ है। उस जमाने में गायक ज्यादा वाद्य-यंत्रों का उपयोग भी नहीं करते थे। हारमोनियम, तबला और सुरीली आवाज, तीन चीजें ही होती थीं। और आज तो गैर-फिल्मी गायक भी तीन-चार वाद्यों की व्यवस्था करते हैं और फिल्मों के संगीत-निर्देशक पचास-साठ वाद्यों पर क्यों रुकें? मान्यता ये बन गयी है कि जितने ज्यादा वाद्य होंगे उतना बड़ा निर्देशक माना जायेगा। यह दूसरी बात है कि इतने तामझाम

के बाद भी संगीत-निर्देशक महोदय वाद्यों में सामंजस्य पैदा न कर सकें और कोई नई धुन न दे सकें।

गुजराती में एक कहावत है—रोना और गाना किसे नहीं आता? इसे सिखाने की जरूरत नहीं पड़ती। वे हमारी मूल अनुभूतियों की अभिव्यक्तियाँ हैं। यह ठीक है कि हर आदमी स्टेज पर लोगों के बीच नहीं गा सकता। पर वह बेसुरी आवाज के बावजूद अकेले में बाथरूम में मूड के मुताबिक गुनगुना तो लेता है। चूँकि वह नया सृजन नहीं कर सकता—पसंद के फिल्मी गीत ही गुनगुना लेता है।

बस। यहीं आकर पाश्चात्य संगीत डिस्को, रॉक वगैरह फेल हो जाते हैं। उसमें ताल और लय हो सकता है। आप थिरक सकते हैं, नाच सकते हैं पर गा नहीं सकते।

ऐसा संगीत पिछले वर्षों से फिल्मों में आ ही नहीं रहा है। अभी हाल ही में एक अपवाद हुआ संगीत-निर्देशक खैयाम का 'उमराव जान' फिल्म का संगीत। चूँकि उसमें नयापन था, ताजगी थी, चालू लीक से हटकर था, बिना किसी प्रचार के लोकप्रिय हो गया। वैसे उमराव जान में खैयाम साहब की खूबी यही है कि उन्होंने शुद्ध शास्त्रीय संगीत और लोकगीतों का प्रयोग किया है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत सुनने व पसंद करने वालों का एक छोटा सा वर्ग है। बाकी लोग तो शास्त्रीय संगीत के नाम से नाक-भौं सिकोड़ते हैं। पर वे नहीं जानते जो फिल्मी गीत या गज़ल अत्यधिक लोकप्रिय हुए उसकी वजह उनका आधार शास्त्रीय संगीत ही है। आज गज़लों के क्षेत्र में पाकिस्तान के गुलाम अली भारतीय शास्त्रीय संगीत के आधार पर ही हर जगह सबसे अधिक लोकप्रिय हैं। गुलाम अली रागों को स्वरलिपि (नोटेशन्स) में जब गाते हैं तो सुनने वाला बरबस 'वाह-वाह! क्या बात है!' कह उठता है। गुलाम अली की सृजन शक्ति भी गज़ब की है। साल में एक-दो नये कैसेट्स या रिकार्ड बन जाते हैं। जगजीत सिंह पिछले दो वर्षों में एक भी बढ़िया नयी गज़ल नहीं दे सके। नतीजा ये हुआ कि दूसरे कलाकार रिक्त स्थान को भरने सामने आये।

विभिन्न शहरों-कस्बों में, रेस्तराँ में वहाँ पान-दुकान पर, गली-कूचे

में गज़लें ही सुनाई देती हैं—तहेदिल से खुशी होती है। जब मैं दिल्ली में पर्यटक के रूप में आये दक्षिण भारतीय या बंगाली सज्जनों को इसलिए कि उनके यहाँ नहीं मिलती गज़ल की नई कैसेट्स खरीदते देखता हूँ, खुशी होती है। कुल मिलाकर यह हमारे संगीत की विजय है।

24 नवम्बर '80

कानपुर

एक शहर उखड़ा-उखड़ा-सा

स्टेशन से रिक्शे में बैठकर बेतहाशा भीड़ में होकर बमुश्किल सौ कदम गया हूँ। चौराहे पर जो दृश्य देखता हूँ समझ नहीं आता हँसूँ या रोऊँ।

गाड़ी में जुते मरियल टट्टू को जैसे किसी ने अधर में लटका दिया है। चारों पैर अधर हवा में छटपटा रहे हैं। वह नथुनों से अजीब आवाज निकाल रहा है। पिछले दो पैर किसी तरह जमीन को छू पाते हैं। पर सामने के दोनों पैर हवा में ठौर ढूँढ़ रहे हैं। ताँगे में बेरहमी से लादी गई साबुन की पेटियों की वजह से उलार होने पर मरियल घोड़ा हवा में कुलाँचें भर रहा है। सड़क पर कुछ पेटियाँ और साबुन की बट्टियाँ बिखरी पड़ी हैं। उसी पर एक सायकल सवार पीछे कैरियर पर गोद में बच्चा लिए बैठी बीवी के साथ गिरता है। छिटककर दूर जा गिरा बच्चा धाड़ें मार-मारकर रो रहा है। सैकड़ों घंटियों को टिन-टिन के बीच कारों-बसों के पचासों हार्न चीख रहे हैं। हवा में गालियाँ उछल रही हैं। पता नहीं कौन किसे दे रहा है। चारों ओर कुहराम मचा हुआ है। उड़ रही बेहद गर्द के मटमैले माहौल का यह दृश्य भीड़ में व्याप्त कनफ्यूज़न को कार्टूनिस्ट मारियो के कार्टून की तरह और गहरा करता है।

कमला नेहरू घंटाघर के सामने का यह दृश्य एक अनवरत चलने वाली फिल्म की तरह है। यह फिल्म स्लो मोशन में रात बारह बजे से सुबह पाँच बजे तक चलती है। वरना एक-सी चलती रहती है। लखनऊ के हुसैनगंज चौराहे या रायपुर के जयस्तंभ चौक पर पीक अवर्स याने शाम

पाँच से सात के बीच रेलपेल के दृश्य भी इसकी स्लो मोशन फिल्म के सामने फीके लगते हैं।

दायें से आ रही सड़क पर खड़ी बीसों बसों से लखनऊ, जौनपुर, फैजाबाद, गोरखपुर के निमंत्रण सुनायी पड़ते हैं। उसके बाजू की एक सड़क से किराना बाजार से आने-जाने वाले लदे हुए ठेले और रिक्शे। तीसरी ओर से लोहे के पच्चीस-तीस फुट लम्बे एंगलस, गार्डर्स, छड़ों से लदे पाँच-छ: पुरबिये मजदूरों द्वारा खींचे जा रहे दो टायर वाले ठेले। स्टेशन आने-जाने वाले सैकड़ों रिक्शे, हजारों साईकिलों के बीच रिक्शे में बैठे हुए भी मैं परेशान हूँ। जबकि परेशान मेरे रिक्शे वाले को होना चाहिए।

पर वह बड़े इत्मीनान से एक बीड़ी जला रहा था। आगे बढ़ना असंभव देखकर मैं नीचे उतरने की चेष्टा करते रिक्शे वाले से पूछा बैठा—अब क्या होगा?

उसने एक गहरा कश खींचकर धुआँ छोड़ते हुए कहा—अरे आप बैठे रहें बाबू साहब, यहाँ तो नीचे उतरने की भी जगह नहीं है।

सड़क पर बिखरी साबुन की बट्टियाँ इकट्ठा कर रहे बूढ़े मियाँ और उनके साथी एक छोटे से बच्चे को एक वजनदार गाली देते हुए—रिक्शे वाले ने बीड़ी मुँह में दबाये रख कर रिक्शा खींचना शुरू किया और लगभग सबको ढकेलते हुए इस घमासान से बाहर निकाल लाया। तब मेरे मुँह से बरबस निकल पड़ा—तो यह कानपुर है!

ऐसा पहली बार तब हुआ था जब मैं जनवरी '80 में गया था। इसके बाद पाँच बार और। बीस लाख से ज्यादा जनसंख्या वाले इस शहर के मामले में जो पहली राय बनी थी उसको इत्मीनान से देखने के बाद भी बदलने की कोई वजह नहीं बनी।

देश के चार महानगरों बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली और मद्रास के बाद दूसरी श्रेणी में आने वाले नगर बैंगलोर, अहमदाबाद, हैदराबाद के मुकाबले में इसकी जनसंख्या है और उद्योग हैं। पर पूरा शहर जैसे स्पंदनहीन है।

देखने के लिए कुछ भी नहीं। सुबह या शाम पैदल घूमने के आदी मुझ जैसे आदमी के लिए सवाल था कि कहाँ घूमा जाए। चिमनियों से

उगलता जहरीला धुआँ और उखड़ी हुई सड़कों की धूल। पोल्युशन (प्रदूषण) इतना कि विश्व में टी०बी० होने का सर्वाधिक प्रतिशत का गौरव इस शहर को प्राप्त है। शहर के तीन-चार प्रमुख भागों पर उद्यागों को जाने वाली रेलवे लाइन पर आपको इंजन शंटिंग करते हुए कभी भी मिल सकते हैं।

गंगा के किनारे बसा है, दो-तीन घाट हैं पर घूमने के लायक नहीं। ऊपर से लोगों ने कह दिया—अरे साहब यहाँ लूट-खसोट और हत्या की वारदातें इतनी होती हैं कि यहाँ कहीं सूने में घूमने जाना ही मत, नहीं तो लफड़ा हो जायेगा।

देश की हर शहर की नगरपालिका अपनी आधुनिक होने की समझ और टेस्ट का परिचय बड़े भोंड़े ढंग से देती रहती हैं। यहाँ की महानगर-पालिका अपवाद क्यों होती। अनेक विशाल चौराहों पर देश के सुप्रसिद्ध नेताओं जवाहरलाल नेहरू, चंद्रशेखर आजाद, डा० आंबेडकर आदि की मूर्तियाँ लगा रखी हैं। यदि मूर्ति में किसी का पूरा व्यक्तित्व दिखाया जाना है तो उसे कम से कम आदमकद होना चाहिए। पर यहाँ बड़े बेस (आधार) पर लगी ढाई और तीन फुट की मूर्तियाँ जैसे गुड्डे लगाए गए हों चौराहे पर। कोई सेंस आफ प्रपोर्शन नहीं।

कहते हैं यहाँ बत्तीस सिनेमा हाल हैं। एक दिन गिना, पच्चीस-छब्बीस के तो विज्ञापन अखबार में ही छपते हैं। दो-तीन को छोड़कर अच्छा हाल कहने की भी कोई गुंजाइश नहीं। टाकीजों में और इनमें कुछ डिग्रीज का ही अंतर है।

एक साहब से मैंने पूछा—कानपुर ऐसा क्यों?

उनका उत्तर था—यह शहर देश के तीन बड़े पूँजीपति जे० के० वाले, सिंघानिया, जयपुरिया और कानोरिया की गिरफ्त में है। बाकी मजदूर हैं, नौकरीपेशा मध्यमवर्गीय लोग हैं और इन सबको माल बेचने वाले दुकानदार हैं। शहर में जो कुछ अच्छा है तीन परिवारों का है। कमला रिट्रीट, मंदिर या अस्पताल सब!

सुरक्षा उत्पादन के चार बड़े कारखाने हैं। फील्ड गन से लेकर बम और कारतूस बनाने के। पर जबलपुर की तरह यहाँ भी उनकी दुनिया ही

अलग है ।

पुरातन पंथी और धार्मिक किस्म के लोगों की किसी पौराणिक या ऐतिहासिक उक्ति को लेकर गौरवान्वित होने की जो समझ होती है, वैसे एक अधिकारी महोदय ने कहा—क्या नहीं है यहाँ । जे० के० का मंदिर है, भव्य ।···यह तो पुण्यमूर्ति है । ब्रह्माजी का निवास माना जाता है कानपुर ।

एकबारगी दिल में हुआ, कहूँ—गंगा के कारण तो पूरा उत्तरप्रदेश पुण्यभूमि है । यहाँ ब्रह्माजी का निवास भी रहा होगा । पर आज क्या है ? क्या करें इस शहर में ?

शहर में शायद हिन्दू साठ प्रतिशत, मुसलमान चालीस प्रतिशत हैं । पर यहाँ कौमी दंगे करवाने वाले सफल नहीं होते । पिछले अगस्त '80 में मुरादाबाद, इलाहाबाद, अलीगढ़, बनारस सब जगह कौमी दंगे हुए । छुट-पुट वारदातें हुईं । पर कानपुर में नहीं । मुहर्रम के अवसर पर मैं कानपुर में था । एक छोटी घटना हुई । अखबारों में छपा कानपुर में कर्फ्यू । घर वालों ने, परिचितों ने सोचा—ये फँस गए वहाँ जाकर । कहीं कुछ नहीं था । एहतियात के तौर पर कर्फ्यू केवल एक मुहल्ले कुलीगंज में लगा था । अन्यथा सब सामान्य था । शायद इसकी वजह यह है कि यहाँ का औद्योगिक मजदूर संगठित है और देश के वामपंथी आंदोलन से जुड़ा हुआ रहा है । वह जानता है कि हिन्दू हो या मुसलमान दोनों एक बराबर पसीना बहाते हैं तब ही मजदूरी मिलती है । दोनों के पसीने की गंध एक ही होती है और समझता है कि सांप्रदायिक दंगों में गरीब ही मारा जाता है ।

खलासी लाइन में एक बोर्ड है—यहाँ शुद्ध सूअर का गोश्त मिलता है । प्रो० जस्सो देवी ।

दूसरे मुहल्ले में एक होटल पर लिखा था—संतोष भोजनालय । यहाँ शुद्ध बकरे की गोश्त की बिरयानी मिलती है । ठीक बाजू में था शिव वैष्णव भोजनालय—शुद्ध शाकाहारी । एक दूसरे से लगे बने हुए पंजाबी ढाबों की तरह यहाँ भी दोनों की भट्ठियाँ लगी हुई थीं । यह दृश्य संभवतः कानपुर में आम बात है ।

मैं चाय पीने 'संतोष जलपान-गृह' में रुका । तब मैंने दोनों के बोर्ड गौर से पढ़े ।

संतोष वाले का मिस्त्री बिरयानी की परात में करछुल चलाते हुए बाजू वाले पंडित रसोइये से कह रहा था—अरे पंडित, आज मेरी बिरयानी खा। बढ़िया बनी है।

पंडित ने हँसते हुए कहा—अबे मुसल्ले। बिरयानी बताता है··· (गाली)···ये दूध पी। सुबह से उबल रहा है। बालाई (मलाई) खायेगा पहलवान बन जायेगा।

दोनों हँस रहे थे।

मुझे बड़ा अच्छा लगा।

30 दिसंबर '80